4586

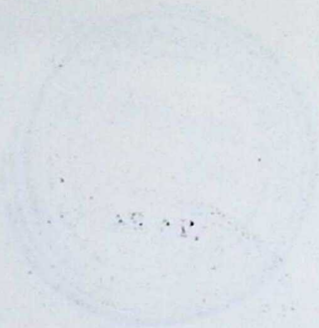

Yoga

अमनस्क योग

AMANASKA YOGA

AMANASKA YOGA

Mahamahopadhyaya
Dr. Brahma Mitra Awasthi

English Translation
by
Shri Bajaranga Singh

Swami Keshawananda Yoga-Samsthan-Prakashana
DELHI-7

Published by
© Swami Keshawananda Yoga Samsthana-Prakashana
8/3 Roop Nagar, Delhi-110007 (India)

Phone 2915321

First Edition
1987

Price Rs. 25.00 PB U.S. Dollors 5·00 PB
Rs. 40.00 Lib Ed. do 8·00 Lib. Ed.

Printed at :
Pankaj Printers
Arjun Muhalla-Maujpur
SHAHDARA-DELHI-32

अमनस्क योग

(तारक-अमनस्क योग)

सम्पादक एवं व्याख्याकार—
डा० ब्रह्ममित्र अवस्थी

अंग्रेजी अनुवाद—
श्री बजरंग सिंह

RGCSLIB
04586

स्वामी केशवानन्द योग संस्थान प्रकाशन
दिल्ली-७

© प्रकाशक—
स्वामी केशवानन्द योग संस्थान प्रकाशन
८/३ रूप नगर, दिल्ली-११०००७ (भारत)
दूरभाष २९१५३२१

प्रथम संस्करण
१९८७

मूल्य २५.०० रुपये
४०.०० पुस्तकालय संस्करण

मुद्रक—
पंकज प्रिन्टर्स
अर्जुन मोहल्ला, मौजपुर
शाहदरा, दिल्ली-३२

Preface

In huge Sanskrit literature, the works published on yoga branch are very little in number. Throughout ancient times yoga has been considered as a strictly secret subject to be tought only to a deserving disciple. But now time has come to uneveil the obscure literature of this occult sciene to popularise this knowledge in the interest of humanity.

Swami Keshavananda Yoga Samsthana Prakashana has determined to publish these rare text along with translations in English, Hindi and other Indian languages. The manuscripts of the following works has been procured :—

(1) Dattatreya Yoga-Shastra, (2) Yoga Bija, (3) Amanaska Yoga, (4) Chandrodaya-Vilasa, (5) Yoga-Ratnakara, (6) Yoga-Tattva (7) Yoga-Chudamani, (8) Yoga Shikha, (9) Yoga.Raja, (10) Yoga Kundalini, (11) Jabala-Darshana (12) Shandilya-yoga, (13) Mandala-Brahmana, (14) Amrita Nada-Yoga (15) Dhyana-Bindu (16) Nada-Bindu, (17) Hansa-Yoga, (18) Kshurika-Yoga (19) Amrita-Bindu, (20) Tejo-Bindu, (21) Brahma-Vidya, (22) Saraswati-Rahasya, (23) Saubhagya lakshmi-Yoga (24) Advaya-Taraka, (25) Trishikhi Brahmana, (26) Varaha-Upnishad, (27) Darshana-Upnishad, and (28) Muktika-Upanishad. All of them are treated as secred in the tredition, so some of these works were counted in Upnishad. We find references of twentyone of the above mentioned work in Muktika-Upnishad by name.

The first two out of them had been published by us in previous years. We are deeply indebted to our readers who have shown were keen interest in our publications. Whe hope that this work Amanaska Yoga alongwith Hindi English translations, will be greeted with same enthusiasm, some other text on Yoga with Hindi and English trans-

lations and some original works on Raja-yoga and Yoga Therapy are ready and will be brought out soon.

We are Very greatful to Shri Bajrang Singh, who accepted our request and translated this work into English. We hope it will be uery useful to them who wants to get the straight way for Yoga-Sadhana to reach the goal of their life.

Makra Sankranti 2043 —Diwakar Awasthi

अमनस्क योग : एक परिचय

योगशास्त्र का व्यवस्थितरूप यद्यपि हमें महर्षि पतञ्जलि के योगसूत्र में प्राप्त होता है, किन्तु इसका प्रथमतः प्रारम्भ कब और किसके द्वारा हुआ है ? इस प्रश्न का निश्चित रूप से उत्तर दे सकना यदि असम्भव नहीं तो अत्यन्त दुष्कर कार्य अवश्य है। सामान्यतः 'इस शास्त्र के आदि गुरु शंकर हैं, ऐसा स्वीकार किया जाता है। अधिकांश श्लोकवद्ध योगग्रन्थों में शिव को उपदेष्टा के रूप में और महादेवी जगदम्बा पार्वती को और कहीं-कहीं भैरव को श्रोता के रूप में निवद्ध किया गया है। शिवसंहिता घेरण्ड संहिता आदि ग्रन्थ इसमें प्रमाण हैं। इस 'अमनस्क योग, ग्रन्थ में वामदेव ने ईश्वर (शिव) से ही जीवन्मुक्तिप्रद उपाय को जानने की इच्छा की है, जिसके उत्तर में ईश्वर (शिव) ने उन्हें इस योग (अमनस्कयोग) का उपदेश किया है; जवकि योगशिखोपनिषद् एवं योगबीज नामकग्रन्थों में स्वयं पार्वती प्रश्न करती हैं। भगवान् शिव ही वहां भी उपदेष्टा के रूप में निवद्ध हैं।[1]

इसके विपरीत योगतत्त्वोपनिषद् में विष्णु वक्ता के रूप में निवद्ध किये गये हैं, यहां श्रोता के रूप में स्वयं ब्रह्मा उपस्थित हैं—

विष्णुर्नाम महायोगी महाभूतो महातपः।
तत्त्वमार्गे यथा दीपो दृश्यते परमेश्वरः।
तमाराध्य जगन्नाथं प्रणिपत्य पितामहः।
पप्रच्छ योगतत्त्वं मे ब्रूहि चाष्टाङ्गसंयुतम्।।[2]

इसी प्रकार दत्तात्रेय योगशास्त्र में दत्तात्रेय को योगशास्त्र के प्रवक्ता के रूप में निवद्ध किया गया है[3] और वहां इन्हें भी विष्णु के रूप में ही स्वीकार किया गया है।[4] इस

---

१. (क) सर्वे जीवाः सुखैर्दुःखैर्मायाजालेन वेष्टिताः।
तेषां मुक्तिः कथं देव कृपया वद शंकर।। योगशिखोपनिषद् १. १.

(ख) नाना मार्गास्त्वया देव कथितास्तु महेश्वर।
अधुना मोक्षदं मार्गं ब्रूहि योगविदांवर ॥
वद्धाः येन विमुच्यन्ते नाथ मार्गमतः परम्।
तमहं कथयिष्यामि तव प्रीत्या सुरेश्वरि ॥ योगवीज ११-१४

२. यागतत्त्वोपनिषद् १. २-३.

३. दत्तात्रेय योगशास्त्र ८-१८.

४. दत्तात्रयस्य विष्णोः पदनलिनयुगं नित्यमेव प्रपद्ये। वही २३६

ग्रन्थ में इस उपदेश को सुनने वाले सांकृति हैं। महाभारत में भगवद्गीता के उपदेष्टा भगवान् कृष्ण भी विष्णु के अवतार हैं। गीता में स्वयं कृष्ण को योगीश्वर स्वीकार किया गया है[१] तथा प्रत्येक अध्याय की पुष्पिका में उस अध्यायविशेष में एक योगविशेष का उपदेश प्रतिपादित है, ऐसा कहा गया है।[२] पातञ्जल योगसूत्र के व्यासभाष्य के व्याख्याकार विज्ञान भिक्षुने योग के प्रवर्त्तक भगवान् हिरण्यगर्भ हैं, .ऐसा संकेत किया है।[३]

इन तथ्यों आधार पर यह मानना ही अधिक सहज लगता है कि योग की परम्परा के आदि प्रवर्त्तक, अथवा इस शास्त्र के प्रथम उपदेष्टा कौन है? इस प्रश्न का आज उत्तर दे सकना सम्भव नहीं है। मानव चेतना के विकास के आदिकाल से ही योगसाधना और उसके शास्त्रीय स्वरूप का आरम्भ हुआ है, भगवान् शिव अथवा विष्णु आदि आराध्य देवों के भक्तों ने अपने-अपने आराध्य देवों को इस शास्त्र का प्रवर्त्तक अथवा आदि उपदेष्टा मान लिया है।

दत्तात्रेय-योगशास्त्र, जो वैष्णव परम्परा का योगग्रन्थ माना जा सकता है, में योग की चार शाखाएं मन्त्रयोग लययोग हठयोग और राजयोग (अष्टाङ्गयोग) वर्णित हैं। इसमें लययोग का प्रवर्त्तक आदिनाथ को माना गया है, और वहीं यह भी कहा गया है कि आदिनाथ स्वयं भगवान् शिव हैं—

लययोगश्चित्तलयः संकेतैस्तु प्रजायते।
आदिनाथेन संकेताः अष्टकोटयः प्रकीर्त्तिताः॥[४]
महादेवस्य नामानि आदिनाथादिकान्यपि।
शिवेश्वरश्च देवोऽसौ लीलया व्यचरत्प्रभुः॥[५]

इसी ग्रन्थ में अष्टाङ्गयोग (राजयोग) का उपदेश करने के अनन्तर उसे कविमार्ग अर्थात् शुक्राचार्य[६] द्वारा प्रवर्त्तित योगमार्ग कहा गया है—

'कविमार्गोऽयमुक्तस्ते सांकृतेऽष्टाङ्गयोगतः' ॥[७]

---

१. यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः। भगवद्गीता १८. अन्तिम श्लोक

२. ओं तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे...... अर्जुन-विषादयोगो नाम प्रथमोध्यायः।' ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे...सांख्ययोगो नाम द्वितीयोऽध्यायः।...' ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे...कर्मयोगो नाम तृतीयोऽध्यायः। इत्यादि

३. हिरण्यगर्भो योगस्य वक्ता नान्यः पुरातनः। इति योगियाज्ञवल्क्यः। पा० यो० सू० योगवार्त्तिक, टीका से उद्धृत।

४. दत्तात्रेययोगशास्त्र २९-३०.

५. वहीं, ३२-३३.

६. उशना भार्गवः कविः। अमरकोश

७. दत्तात्रेययोगशास्त्र २५९।

दत्तात्रेय योगशास्त्र में ही महामुनि कपिल को हठयोग का प्रवर्त्तक अथवा प्रमुख साधक दूसरे शब्दों में हठयोग की परम्परा का प्रधान आचार्य माना है—

कपिलाद्यास्तु शिष्याश्च हठं कुर्युस्ततो यथा ॥
तद्यथा च महामुद्रा महाबन्धस्तथैव च ।
ततः स्यात्खेचरीमुद्रा बन्धो जालन्धरस्तथा ॥
उड्डियाणं मूलबन्धो विपरीतकरणी तथा ।
वज्रोलिरमरोलिश्च सहजोलिस्त्रिधा मता ॥[1]

पतञ्जलि प्रणीत योगसूत्र में 'ईश्वरप्रणिधानाद्वा', 'क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः, 'तस्य वाचकः प्रणवः' तज्जपस्तदर्थभावनम्'[2] सूत्रों में मन्त्रयोग अर्थात् अर्थ भावना के साथ मन्त्र के जप का स्पष्ट निर्देश हुआ है। इस आधार पर यह कहना अनुचित न होगा कि पतञ्जलि से पूर्व मन्त्रयोग भी पर्याप्त प्रचलित था, अथवा योगसाधना की स्वतन्त्र शाखा के रूप में मन्त्रयोग की सम्यक् प्रतिष्ठा हो चुकी थी। स्मरणीय है कि दत्तात्रेय योगशास्त्र में मन्त्रयोग को योग की एक स्वतन्त्र शाखा मानते हुए भी उसे अधमयोग तथा मन्त्रयोगी की मृदुयोगी और साधकाधम कहा गया है।[3]

योग सम्बन्धीं इन इतिहासपरक निर्देशों के आधार पर यह स्वीकार करने में किसी प्रकार की आपत्ति नहीं होनी चाहिए कि योग साधना की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है, और इसकी विविध शाखाएं मन्त्रयोग लययोग हठयोग आदि भी इतने ही प्राचीन काल से व्यापक रूप से प्रचलित थीं कि आज उनका आदिकालीन इतिहास खोज पाना असम्भव है। संभवतः यही कारण है कि शिव एवं विष्णु आदि के भक्तों ने अपने-अपने आराध्य देवों को ही इस योगविद्या का आदि उपदेष्टा मान लिया है।

योगविद्या या योगशास्त्र के इतिहास की इस प्रासङ्गिक चर्चा के वाद मैं अव प्रस्तुत के मुख्य विषय अमनस्क योग पर आता हूं। अमनस्क योग, जिसे आज की भाषा में भावातीत ध्यान (Transcendental meditation) कहा जा रहा है, भी योग

---

१. दत्तात्रेय योग शास्त्र ५७-६१.

२. पातंजलयोग सूत्र पाद १. सू०

३. अङ्गेषु मातृकान्यासपूर्वं मन्त्रं जपन् सुधीः ।
यं कञ्चनाभिसिद्ध्यै स्यान्मन्त्रयोगः स कथ्यते ॥
मृदुस्तस्याधिकारी स्याद् द्वादशाब्दैस्तु साधनात् ।
प्रायेण लभते सिद्धिं सिद्धीश्चैवाणिमादिकाः ॥
अल्पबुद्धिरिमं योगं सेवते साधकाधमः ।
मन्त्रयोगो ह्ययं प्रोक्तो योगानामधमस्तथा ॥ दत्तात्रेययोगशास्त्र २५-२८.

की एक अत्यन्त प्राचीन शाखा है। दत्तात्रेय के अनुसार इसे लय योग के अन्दर वर्गीकृत करना चाहिए, जिसका प्रथम उपदेश आदिनाथ भगवान् शिव ने किया था।[१] उनके अनुसार बैठे हुए खड़े हुए चलते हुए या सोते हुए अथवा भोजन करते हुए अर्थात् किसी भी स्थिति में रहने पर शून्य का ध्यान करना आदिनाथ द्वारा उपदिष्ट प्रथम संकेत है—

तिष्ठन् गच्छन् स्वपन्भुञ्जन् ध्यायन् शून्यमहर्निशम्।
अयमेको हि संकेत आदिनाथेन भाषितः ॥[२] इत्यादि।

यहां शून्य पद का अर्थ विन्दु अथवा संख्या का एक चिह्न विशेष (०) नहीं है, अपितु विषय का अभाव है। तात्पर्य यह है कि विना किसी विषय को ध्येय वनाए चित्त को स्थिर करना। इसे ही ध्यान की परिभाषा के रूप में 'ध्यानं निर्विषयं मनः'[३] सूत्र में परिभाषित किया गया है।

लययोग साधना की परम्परा में शून्य के ध्यान (अमनस्कता) को अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अथवा सर्वोत्कृष्ट साधना माना गया है। वहीं यह भी कहा गया है कि जिसे यह सिद्धि मिल गयी है, वह ही सेव्य गुरु हो सकता है—

दृष्टिः स्थिरा यस्य विनैव दृश्यात्
वायुः स्थिरो यस्य विना प्रयत्नात्।
चित्तं स्थिरं यस्य विनावलम्बात्
स एव योगी स गुरुः स सेव्यः ॥[४]

इस साधना में क्योंकि मन को ही निर्विषय दूसरे शब्दों में क्रिया-रहित (स्वधर्म से रहित) किया जाता है, अतः इसे अमनस्क योग कहते हैं।

अमनस्क योग का सर्व प्रथम उल्लेख हमें महाभारत में मिलता है। वहां कहा गया है कि 'जो साधक एक आसन में चुप चाप विना विषय के चिन्तन करता हुआ लीन हो जाता है, वह धर्म अधर्म और शुभ अशुभ से परे हो जाता है।'[५] आचार्य शंकर

---

१. गिरिकूटे चित्रकूटे सुपादपयुते गिरौ।
कृपयैकैकसंकेतं शंकरः प्राह तत्र तान् ॥
तानि सर्वाणि वक्तुं हि न शक्नोमि तु विस्तरात्।
कानिचित् कथयिष्यामि सहजाभ्यासवत् सुखम् ॥ दत्तात्रेययोग ३६-३
२. वही ४०-४१
३. सांख्यदर्शन ६'२५
४. अमनस्क योग २-४२
५. नैव धर्मी नचाधर्मी न चैव हि शुभाशुभी।
यः स्यादेकासने लीनः नैव किंचिदचिन्तयन् ॥
श्रीमद्भगवद्गीता, शाङ्कर भाष्य पृ० २ से उद्धृत।

ने भी महाभारत के उपर्युक्त पद्य को गीताभाष्य की प्रस्तावना में उद्धृत करते हुए अमनस्क योग की ओर संकेत किया है। इससे यह अनुमान करना अस्वाभाविक न होगा कि अत्यन्त प्राचीन काल के मूर्धन्य दार्शनिकों में भी इस अमनस्क साधना के प्रति महान् आदर था।

महाकवि रत्नाकर के हरविजय महाकाव्य में दो बार अमनस्क योग की चर्चा हुई है। एक स्थल पर कवि ने अमनस्क पद का प्रयोग किये बिना साधना विधि का वर्णन करते हुए कहा है कि 'तब तक अभाव की भावना करे जब तक तन्मयता को न प्राप्त हो जाए'— अभावं भावयेत्तावत् यावत् तन्मयतां व्रजेत्।[1]

एक अन्य स्थल पर 'अमनस्क योग' शब्द का भी प्रयोग करते हुए कवि ने इस योग के प्रति अत्यन्त आदर पूर्वक कविनिबद्धवक्ता द्वारा शिव से प्रार्थना करते हुए कहलाया है कि—'अमनस्क-योग साधना का व्रत करने वाले साधकों को जिस निरञ्जन पद की प्राप्ति होती है, वह आपके अनुग्रह से हमें प्राप्त हो'—

अमनस्कयोगगतिसंशितव्रतैः
यदवाप्यते किल निरञ्जनं पदम्।
निरुपप्लवां च दधदात्मनि स्थितिं
भव नान्तरीयकमनुग्रहस्य ते ॥[2] इत्यादि

अमनस्क योग (भावातीतध्यान) के सम्बन्ध में इस प्रकार के प्राचीन एवं आदर भरे महत्त्वपूर्ण उल्लेख संस्कृत वाङ्मय में हमें अनेक प्राप्त होते हैं, जिससे इस योग साधना पद्धति की प्राचीनता एवं अत्यन्त प्राचीन काल में भी इसके प्रति अतिशय आदर भाव के होने में कोई सन्देह नहीं रह जाता, किन्तु यह अत्यन्त दुर्भाग्य की बात है कि इस साधना पद्धति का प्रतिपादक कोई अधिक प्राचीन ग्रन्थ हमें प्राप्त नहीं है।

महर्षि पतञ्जलि वर्णित अष्टाङ्गयोग साधना पद्धति की चरम स्थिति असम्प्रज्ञात समाधि, जिसमें वितर्क विचार आनन्द एवं अस्मिता का भी अनुगम समाप्त हो जाता है, ही अमनस्क योग की भी चरम उपलब्धि है, इस आधार पर पतञ्जलि के योग से अभिन्न अमनस्क योग को सिद्ध करने का हठात् प्रयत्न किया जा सकता है। पतञ्जलि के योगसूत्रों में दर्शनपक्ष एवं साधना पक्ष समान भाव से वर्णित हैं, किन्तु फिर भी पातञ्जल योगसूत्र को अमनस्कयोग का ग्रन्थ कहने का प्रयत्न करना हठवाद की श्रेणी का ही कार्य कहा जायेगा; क्योंकि असम्प्रज्ञात समाधि की स्थिति दोनों साधना पद्धतियों की चरम स्थिति होने पर भी दोनों पद्धतियों के साधना क्रम में महान् अन्तर है पतञ्जलि के अष्टाङ्गयोग साधना के क्रम में विषय सम्बद्ध मन का व्यापार

---

१. हरविजय महाकाव्य
२. वही ६. १४३

साथ चलता है, देशबन्धश्चित्तस्य धारणा, तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्, तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः" सूत्रों द्वारा दी गई धारणा ध्यान और समाधि की परिभाषाएं इसका स्पष्ट प्रमाण हैं।

अमनस्क योग साधना के क्रम में हमें केवल एक ग्रन्थ प्राप्त होता है, जिसे ग्रन्थकार ने स्वयंबोध या अमनस्क योग नाम दिया है।[2] यह ग्रन्थ अधिक प्राचीन नहीं प्रतीत होता। इसकी किसी पाण्डुलिपि में इसके रचयिता अथवा रचनाकार का उल्लेख नहीं है, जबकि योगनाथ स्वामी ने इसे गोरक्षनाथ कृत माना है, जो नवम शती से पूर्व स्वीकार किये जाते हैं। किन्तु इतने से इस ग्रन्थ की प्राचीनता सिद्ध नहीं हो पाती, क्योंकि इस ग्रन्थ का गोरक्षनाथकृतित्व ही सन्दिग्ध है। ऐसा कहने का मुख्य कारण मैं प्रस्तुत अमनस्क योग नामक ग्रन्थ में विविधशास्त्रों एवं अनेक साधना पद्धतियों के प्रति अत्यन्त उग्र आक्रोश की अभिव्यक्ति को मानना चाहूंगा। इस आक्रोश के कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं :—

जित्वा वायुं विविधकरणैः क्लेशमूलैः कथञ्चित्
कृत्वा यत्नं निजतनुगताशेषनाडीप्रवाहान्।
अश्रद्धेयां परमपुरगतिं साधयित्वाऽपि नूनम्
विज्ञानैकव्यसनसुखिनो नास्ति मोक्षस्य सिद्धिः ॥[3]

केचिन्मूत्रं पिवन्ति स्वमलमथ तनोः केचिदश्नन्ति लालाम्,
केचित्काष्ठां प्रविष्टाः युवतिभगपतद्विन्दुमूर्ध्वं नयन्ति।
केचित्खादन्ति धातूनखिलतनुशिरावायुसंचारदक्षाः,
नैतेषां देहसिद्धिर्विगतनिजमनोराजयोगाद् ऋते स्यात् ॥[4]

उपर्युक्त दोनों ही पद्यों में प्राणायाम साधना, नाडीचक्रों के जागरण, ज्ञानयोग, हठयोग की क्रियाएं वज्रोलि आदि, विविध साधनाओं के प्रति तिरस्कारर भावना की अभिव्यक्ति हुई है। इसी प्रकार—

केचित्तर्कवितर्ककर्कशधियोऽहंकारदर्पोद्धताः,
केचिज्जातिगताभिमानभरिताः ध्यानादिकर्माकुलाः।
प्रायः प्राणिगणा विमूढमनसो नाना विकारान्विताः,
दृश्यन्ते नहि निर्विकारसहजानन्दैकभोगाकुलाः ॥[5]

---

१. पातञ्जल योगसूत्र ३. १-३
२. इति श्री...अमनस्के स्वयं वोधाख्यो द्वितीयः।
३. अमनस्क योग ३२
४. अमनस्क योग २, ३३.
५. वही, २, ३४

एकदण्डत्रिदण्डादिजटाभस्मादिधारणम् ।
केशलुंचननग्नत्वे रक्तचीवरधारणम् ।।
उन्मत्तताऽऽमभोज्यान्नपानं पाखण्डवृत्तिता ।
इत्यादि लिङ्गग्रहणं नानादर्शनदर्शनम् ।।
नोत्पन्नस्वावबोधस्य ह्युदासीनस्य तिष्ठतः ।
सदाभ्यासरतस्यैतेष्वेकमप्युपयुज्यते ।।[1]

इत्यादि पद्यों में एक ओर विविध शास्त्रों के वैदुष्य का तिरस्कार प्रगट होता है, वहीं वैष्णव शैव जैन बौद्ध आदि धर्मों के आचार नियमों और चिह्नों आदि का तिरस्कार करके विना किसी तर्क के स्वयं बोधाख्य अमनस्क योग की श्रेष्ठता और अतुलनीयता प्रतिपादित है, जो अधिक प्राचीन शैली नहीं है, न दार्शनिक परम्परा में ही स्वीकार शैली हैं। अतः इसे अधिक प्राचीन कहना संभव नहीं है।

जहां तक योगनाथ स्वामी के इस कथन का प्रश्न है कि 'यह ग्रन्थ गोरक्षनाथ विरचित्त है, इसको स्वीकार करने के लिए कोई पुष्ट प्रमाण नहीं है; क्योंकि ग्रन्थ के मंगलाचरण अथवा पुष्पिका में ग्रन्थ कर्त्ता के सम्वन्ध में कोई संकेत नहीं मिलते हैं। जहां तक परम्परागत मान्यता का प्रश्न है, जिसमें अमनस्क योग को गोरक्ष की रचना माना जाता है, वहीं उसी परम्परा में योगवीज को भी गोरक्ष की रचना स्वीकार किया गया है, जवकि दोनों की मान्यताओं में परस्पर विरोध स्पष्ट दिखाई देता हैं, उदाहरणार्थ योगवीज में सूर्यभेद, उज्जायी, शीतली भस्त्री प्राणायामों का अत्यन्त आदर के साथ उल्लेख हुआ है,[2] किन्तु इस ग्रन्थ में प्राणायाम की क्रिया के प्रति तिरस्कार व्यक्त किया गया है,[3] जो इन दोनों रचनाओं को एक लेखक की रचना मानने में सन्देह उपस्थित कर देता है। हठयोग के अनेक ग्रन्थ गोरक्ष के नाम से स्वीकृत हैं किन्तु इस अमनस्क में हठयोग की ही क्रिया वज्रोलि के प्रति अत्यन्त तिरस्कार प्रगट हुआ है। अत एव इस ग्रन्थ अमनस्क योग को गोरक्षनाथ की रचना मानना प्रशस्त नहीं लगता। इस संक्षिप्त चर्चा के बाद में अमनस्क योग ग्रन्थ के कर्त्तृत्व के प्रश्न को यही यह कहकर छोड़ना चाहूंगा कि 'योग साधना के विविध सम्प्रदाय अत्यन्त प्राचीन काल से गुरु परम्परा में प्रचलित रहे हैं। उन सम्प्रदायों की साधना पद्धति को, वहुत संभव है, समय-समय पर गुरुजनों ने शिष्यों की सुविधा के लिए अथवा शिष्यों ने स्मरण करने की सुविधा के लिए श्लोक वद्ध कर लिया हो। ये श्लोक भी अपने-अपने सम्प्रदाय में गुरु परम्परा में चिरकाल तक प्रचलित रहे हैं। कालान्तर में लिपिवद्ध करने की आवश्यकता का अनुभव होने पर लेखक का नाम दिये विना ही उन्हें लिपिवद्ध भी कर लिया गया। कालान्तर में 'ये रचनाएं अमुक प्राचीन गुरु की हैं' ऐसी कल्पना कुछ भक्तों ने

---

१. वही २, ३५-३७.

२. योगवीज १९०-२११.

३. अमनस्क योग २, ३२-३३.

श्रद्धावश कर ली। वस्तुत इस प्रकार की अनेक रचनाएं अज्ञात कर्तृक माननी चाहिएं।

अमनस्कयोग ग्रन्थ के अनुसार विश्व के सात प्रधान तत्त्व हैं: पृथिवी जल अग्नि वायु आकाश मनस् और परतत्त्व। इनमें पूर्व-पूर्व स्थूलतर एवं उत्तरोत्तर सूक्ष्मतर हैं। इनमें पृथिवी से आकाश पर्यन्त पाँच तत्त्व महत्परिमाण वाले साक्षात् अथवा परम्परया इन्द्रिय ग्राह्य हैं। मन भी पृथिवी आदि की भांति मूर्त्त पदार्थ है, जो इन्द्रियों के माध्यम से अन्य पदार्थों (तत्त्वों) के साक्षात्कार का हेतु वनता है। इनका इस ग्रन्थ में केवल परिगणन मात्र हुआ है स्वरूप विश्लेषण नहीं। पर या परमतत्त्व इन सवसे सर्वथा भिन्न है। वह (परतत्त्व) भावरूपता और अभावरूपता दोनों से भिन्न उत्पत्ति और विनाश से रहित समस्त संकल्पनाओं से अतीत है। वह परिणाम से रहित, इन्द्रियों द्वारा अग्राह्य अचल ध्रुव एवं सभी प्रकार की उपाधियों अथवा कामों से रहित है :—

'भावाभावविनिर्मुक्तं विनोशोत्पत्तिर्वजितम्।
सर्वसंकल्पनातीतं परतत्त्वं तदुच्यते ॥
अनाकारमवच्छिन्नमग्राह्यमचलं ध्रुवम्।
सर्वोपाधिविनिर्मुक्तं सर्वकामविर्वजितम् ॥'[१]

क्योंकि यह परतत्त्व भावातीत है, अतः इसके साक्षात्कार में अमनस्कता स्वतः आ जाती है। इस भावातीत ध्यान के लिए दत्तात्रेय के अनुसार उठते-बैठते चलते-फिरते खाते पीते सभी स्थितियों में शून्य का, भावातीत परतत्त्व का ध्यान करना चाहिए।[२] किन्तु अमनस्क योग ग्रन्थ के लेखक के अनुसार सर्वप्रथम सिद्ध गुरु के मुख से इस साधना के पथ को सम्यक् समझना चाहिए, उसके बाद कहीं एकान्त मनोरम प्रदेश में सुख पूर्वक; दुःख वाधा आदि से रहित आसन पर बैठकर सभी अंगों को शिथिल करके वाहु प्रमाण दूरी पर किसी भी दृश्य पदार्थ पर दृष्टि को स्थिर करना चाहिए। इस अभ्यास क्रम में साधक को चाहिए कि वह अपने मन कोसभी चिन्ताओं से रहित कर लेवे :—

'एवंविधगुरोः शब्दात्सर्वचिन्ताविर्वजितः।
स्थित्वा मनोहरे देशे योगमेव सदाभ्यसेत् ॥
विविक्तदेशे सुखसन्निविष्टः
समासने किञ्चिदुपेत्य पश्चात्।
वाहुप्रमाणं स्थिरदृक् श्लथाङ्गः
चिन्ताविहीनोऽभ्यसनं कुरुष्व ॥'[३]

---

१. अमनस्क योग १. २१-२२.
२. दत्तात्रेय योगशास्त्र ४०-४१.
३. अमनस्क योग १. २७-२८.

इस साधना क्रम में साधक को सभी स्थूल या सूक्ष्म पदार्थों से अपने ध्यान को हटाने का प्रयत्न करना चाहिए, सभी चिन्ताओं से परे होने का प्रयत्न करना चाहिए। वह साधक जब अन्दर बाहर सभी चिन्ताओं से मुक्त हो जाता है, तो उसे परतत्त्व का बोध होता है, और तभी उसमें अमनस्कता आ जाती है, इस स्थिति में पहुंचने पर साधक के चित्त का प्राणों में विलय हो जाता है, अर्थात् चित्त (मन) की गति अवरुद्ध हो जाती है, वाह्यज्ञान समाप्त हो जाता है। फलतः वह सर्वमय अर्थात् परतत्त्व रूप भावावभाव विनिर्मुक्त हो जाता है। कहा भी है :—

न किञ्चिन्मनसा ध्यायेत् सर्वचिन्ताविवर्जितः।
तत्त्वस्य सम्मुखे जाते त्वमनस्कं प्रजायते ॥[1]
अमनस्केऽपि संजाते चित्तादिविलयो भवेत्।
चित्तादिविलये जाते पवनस्य लयो भवेत्।
मनःपवनयोर्नाशाद् इन्द्रियार्थान् विमुञ्चति।
इन्द्रियार्थैर्यदा मुक्तो वाह्यज्ञानं न जायते।
वाह्यज्ञाने विनष्टे च ततः सर्वमयो भवेत् ॥[2]

साधक जब इस स्थिति में पहुंच जाता है, तब वह इन्द्रियों के विषयों में विचरण करते रहने पर भी सुख अथवा दुःख का शीत अथवा ताप का अनुभव नहीं करता।

सुखदुःखे न जानाति शीतोष्णे न च विन्दति।
विचरंश्चेन्द्रियार्थेषु न वेत्ति च लयं गतः ॥[3]

साधक की यह स्थिति प्रथमतः निमेषमात्र के लिए ही होती है, किन्तु क्रमशः अभ्यास में लगे रहने पर उसकी यह स्थिति कुछ घण्टे प्रहर या दिन भर के लिए ही नहीं वर्षों के लिए भी हो जाती है। काल संख्या पर आधारित इन विविध स्थितियों का वर्णन ग्रन्थ में (अमनस्क योग ग्रन्थ में) वहुत विस्तार से किया है।[4] निमेषमात्र के लिए भी लय-अवस्था, जो कि भावातीत ध्यान अवस्था की प्रथम स्थिति है, को प्राप्त कर लेने पर योगी को परतत्त्व का अनुभव तो होता ही है, वह समस्त वाह्य भोगों से ऊपर भी उठ जाता है। इस 'उत्थान' को कुछ लोग 'भूमि से उठ जाता है' ऐसी व्याख्या करते हैं। भूमि से उत्थान की स्थिति प्राणायाम साधना के क्रम में घटावस्था में पहुंचने पर, जव प्राणों का प्रवेश सुषुम्ना नाड़ी में होता है, साथ ही साथ कुण्डलिनी का भी जागरण हो जाता है, अवश्य होती है; किन्तु वह साधना का एक भिन्न प्रकार है, अर्थात् अमनस्क योग या भावातीत ध्यान तथा प्राणायाम साधना ये दोनों अलग साधना पद्धतियां हैं।

इस साधना के प्रसङ्ग में यह प्रश्न हो सकता है कि साधक जब प्रथमतः

---

१. यही, १, ३१.
२. अमनस्क योग १, ३२-३४.
३. वही १, ३७.
४. वही,

बाहुप्रमाण दूरी पर किसी भाव-पदार्थ पर दृष्टि को स्थिर करता है, तब मन को विषयमय होना चाहिए भावातीत (विषयातीत) नहीं। इस प्रश्न के समाधान के क्रम में ग्रन्थकार का कहना है कि जिस प्रकार अंकुश द्वारा नियन्त्रित न रहने पर भी हाथी अपने काम्य पदार्थ को प्राप्त करके स्वतः लौट पड़ता है, उसी प्रकार अवारित मन भी अभ्यास क्रम चलते रहने पर स्वतः विलीन होने लगता है :—

यथा निरङ्कुशो हस्ती कामान् प्राप्य निवर्त्तते।
अवारितं मनस्तद्वत् स्वयमेव विलीयते॥[1]

इसे ही स्पष्ट करते हुए ग्रन्थकार का कहना है कि साधक की दृष्टि पहले तो विषयों पर जाती है, फिर वह वहीं जिस किसी विषय पर अथवा विषय के अंशपर संसक्त होती है, इसके बाद वह वहीं स्थिर हो जाती और वहीं स्थिर रहने पर धीरे-धीरे वहीं विलीन भी हो जाती है :—

'प्रथमं निःसृता दृष्टिः संलग्ना यत्र कुत्रचित्।
स्थिरीभूता च तत्रैव विनश्यति शनैः शनैः॥[2]

किन्तु इस स्थिति में आने के लिए साधक को अपनी संकल्प परपरम के उच्छेदन के लिए निरन्तर सावधान रहना पड़ता है। संकल्प विकल्प के अभाव में मन का अवलम्ब क्रमशः क्षीण होने लगता है, फलतः दृष्टि तथा उसके साथ-साथ अन्य इन्द्रियां भी, क्रमशः अपचित होकर शान्त हो जाती हैं। इसके लिए साधक को वैसे ही सावधान रहना चाहिए, जैसे तराजू से तौलने का कार्य करने वाला वणिक् दोनों पलड़ों पर समता (समभार) लाने का प्रयत्न करते हुए चंचल तुला को (तराजू की डण्डी या कांटे को) स्थिर करता है। अमनस्क साधना के क्रम में चंचल तुला को स्थिर करने वाले तुलाधार की उपमा अत्यन्त सटीक है। जब तक मन में सन्तुलन न होगा, राग और द्वेष का सम्बन्ध बना रहेगा, तब तक समाधि की, अमनस्क-भाव की, संभावना नहीं हो सकती। यही कारण है कि इस प्रसङ्ग में ग्रन्थकार ने औदासीन्य (उदासीन भाव) को अमृतपूर की भाँति उपादेय कहा है। उसकी मान्यता है कि जब तक किसी विषय की प्राप्ति के लिए राग अथवा उसको छोड़ने के लिए द्वेष रहेगा, और जब तक एतदर्थ प्रयत्न चलता रहेगा, तब तक सम्बन्ध के अभाव की कल्पना नहीं हो सकती। किसी विषय के प्रति रागात्मक सम्बन्ध जिस प्रकार मन के बन्धन का कारण होता है, द्वेषात्मक सम्बन्ध भी उसी प्रकार बन्धन का कारण बनता है। सम्बन्ध रागात्मक न होकर द्वेषात्मक हो, तब भी सम्बन्ध तो है, सम्बन्ध का अभाव तो न हुआ। इस स्थिति में अहंभाव ममभाव, तो रहता ही है, और जब तक यह अहन्ता ममता रहेगी, द्वैत भी रहेगा, और तब तक तत्त्वावबोध का प्रश्न ही नहीं है। किन्तु

---

१. अमनस्क योग २, ७७।

२. वही २, ६७.

जिस क्षण राग और द्वेष को तुला के दण्ड के दो किनारों के समान सन्तुलित कर लिया जाता है और उसके फलस्वरूप विश्व के समस्त पदार्थों के प्रति राग और द्वेप के स्थान पर उदासीनता उत्पन्न होकर प्रतिष्ठित होने लगती है, उस क्षण से ही जगद्रूपी वृक्ष का उन्मूलन प्रारम्भ हो जाता है, और उसके (उदासीनता) पूर्णतः प्रतिष्ठित होते ही जगद्रूपी वृक्ष गिर जाता है, विनष्ट हो जाता है :—

यावत्प्रयत्नलेशोऽस्ति यावत्संकल्पकल्पना ।
अहं त्वमिति सम्प्राप्तिः तावत्तत्त्वस्य का कथा ॥
औदासीन्यामृतौघेन वर्धमानेन योगिनाम् ।
उन्मूलित-मनोमूलो जगद्वृक्षः पतिष्यति ॥

इस प्रकार राग द्वेष के सन्तुलन से दूसरे शब्दों में उन्मूलन से, उत्पन्न औदासीन्य इस साधना पद्धति का सबसे महत्त्वपूर्ण तत्त्व है, और इसकी सिद्धि से भी विश्व प्रपञ्च से मुक्ति प्राप्त हो सकती है ।

यह साधना पद्धति भी अन्य साधना पद्धतियों के समान योग-साधना की एक प्राचीन पद्धति है । महाभारत गीताभाष्य एवं हरविजय महाकाव्य जैसे प्राचीन ग्रन्थों में इस साधना पद्धति का उल्लेख होने पर भी इसके प्रतिपादक ग्रन्थ आज भी अनुसन्धान के विषय हैं, जो एक ग्रन्थ प्राप्त है, उसकी अधिक प्राचीनता न होने पर भी उसमें प्रतिपादित साधना विधि अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है । इस प्रसङ्ग में विशेष अनुसन्धान की अपेक्षा है ।

□

SRINGERI
4586

INTRODUCTION

The Yoga-shastra in its well systematised form is found in 'Patanjali Yoga-shastra'. Though it may perhaps be not impossible, however, it is rather very difficult to say categorically, as to when and how the Yoga-shastra came into existence and who was its founding-father. It is, however, accepted in general that Bhagwan Shankera was Aadi Guru (the first Preceptor) of Yoga-shastra. In most of the works'on Yoga-shastra, composred in sanskrit verses (slokas), we find Lord shiva as the Preacher and His consort Maha Devi Jagdamba Parvati as the principal pupil in audience. In some places we find Bhairava as the main listner. The works like Shiva Samhita, Gheranda Samhita etc. stand in testimony. In 'Amanaska-Yoga' we see that Vamadeva prays to Ishwar (Shiva) to bestow upon him the knowledge of Jivanmukti (liberation) and granting his request, Shiva preaches him the Amanaska Yoga'. In 'Yoga-Shikhopanishad' and 'Yoga-Bija', Parvati herself puts this question before shiva.[1]

In Yoga-Tattvopanished, Lord Vishnu is the Preceptor—Teacher and Lord Brahma is the pupil-taught.[2]

In the same way in Dattatreya Yoga-shastra, Dattatrya, who is considered as 'Vishnu', is the propounder of Yoga-shastra and

---

१. (क) सर्वे जीवाः सुखैर्दुःखैर्मायाजालेन वेष्टिताः ।
तेषां मुक्तिः कथंदेव कृपया वद शंकर ॥ योगशिखोपनिषद् १.१

(ख) नाना मार्गास्त्वया देव कथितास्तु महेश्वर ।
अधुना मोक्षदं मार्गं ब्रूहि योगविदांवर ।
वद्धा येन विमुच्यन्ते नाथ मार्गमतः परम् ।
तमहं कथयिष्यामि तव प्रीत्या सुरेश्वरि ॥ योगवीज ११-१४

२. विष्णुर्नाम महायोगी महाभूतो महातपः ।
तत्त्वमार्गे यथा दीपो दृश्यते पग्मेश्वरः ।
तमाराध्य जगन्नाथं प्रणिपत्य पितामहः ।
प्रपच्छ योगतत्त्वं में ब्रूहि चाष्टाङ्ग संयुतम् ॥ योगतत्त्वोपनिषद् १.२.३

Sankriti is the listner (pupil).[1] Lord Shri Krishna, the teacher of Bhagwad Gita to Arjun is incarnation of Lord Bishnu. Shri Krishna has been proclained as 'Yogeshwai' (the Lord of the Yoga) in Gita.[2] Each chapter of Gita has been named as a specific yoga according to the subject-matter discussed therein, as mentioned in the colophone given at the end of each chapter. The author of the exposition on 'the commentary on Patanjali's Yoga-sutra of Vyasa', indicates that the propounding father of the Yoga-shastra is none other than 'Hiranyagarbha.[3]

From the facts mentioned above we can simply say that, at least for the present, it is not possible to say as to who was the founding father of Yoga-shastra. Right from the beginning of the evolution of Human-conciousness in human beings, the Yoga-shastra and its concept has started.

Dattatreya—Yoga-shastra, which is considered to be a work on yoga belonging to vaishanava tradition, describes four branches of yoga namely Mantra yoga, Laya yoga, Hatha yoga and Raja yoga (Ashtanga yoga) and accepts Adi Nath as the propounder of Laya-yoga, stating that Adi Nath was Shiva Himself.[4]

In the Dattatreya Yoga-shastra, after describing the Ashtanga yoga (Raja-yoga), it has been stated that the Ashtanga yoga is the Kavi-marga—the path prescribed by Shri Shukracharya.[5] The great sage, Kapil has been accepted as the founder—the

---

1. Yoga-Sastra by Dattatreya 8-18 and 336

२. यत्र योगेश्वरः कृष्णो तत्र पार्थो धनुर्धरः । गीता १८.७७

३. हिरण्यगर्भो योगस्य वक्ता नान्यः पुरातनः ॥ इति योगियाज्ञवल्क्यः ।
पतंजलि योगसूत्र योगवर्तिका टीका

४. लय योगश्चित्तलयः संकेतैस्तु प्रजायते ।
आदिनाथेन संकेताः अष्टकोटि प्रकीर्तिताः॥ दत्तात्रेय योगशास्त्र २९-३०
महादेवस्य नामानि आदिनाथादिकान्यपि ।
शिवेश्वरश्च देवोऽसौ लीलया व्यचरत्प्रभुः ॥ दत्तात्रेययोगशास्त्र ३२-३३

5. कविमार्गोऽयमुक्तस्ते सांकृतेऽष्टाङ्गयोगतः । दत्तात्रेययोगशास्त्र २.५९

preceptor—preacher of the Hatha Yoga[1].

In the aphorismsutra 3 to 28. Chapter I[2] of Patanjali Yoga-shastra there is clear indication of Mantra yoga or the Mantra Japa, wherein it has been prescribed to repeat the name of God, 'Om', and medidate on its meaning. On this basis it will not be in-correct to say that the Mantra-yoga was prevalent even before Patanjali's period, having established itself as an independent branch of Yoga-sadhana. It may however be pointed out that Dattatreya Yoga-shastra, inspite of accepting Mantra-yoga as an independent branch of Yoga-sadhana, does not hold good opinion about it as the system of Mantra-yoga has been described as Adhama-yoga (the yoga of the lower category) and those who practise that yoga have been considered as Adhama sadhaka (the sadhakas of low category)[3].

From the above historic facts there should be no hesitation in accepting the great antiqueness of the Yoga-shastra and its diffe-rent branches like Mantra-yoga, Laya yoga, Hatha yoga etc. which were so widely prevalent that it appears to be an impossible task to trace the history of origin of yoga. It is perhaps the reason that the devotees of Lord Shiva and Lord Vishnu have attributed the credit of being the founding-father—the propounder—preceptor of yoga shastra to their respective Lord worshipped by them.

---

१. कपिलाद्यास्तु शिष्याश्च हठ० कुर्युस्ततो यथा ।
तद्यथा च महामुद्रा महावन्धस्तथैव च ।
ततः स्यात्खेचरींमुद्रा बन्धो जालन्धरस्तथा ।
उड्ड़ियाणं मूलवन्धो विपरीतकरणी तथा ।
वज्रोलिरमरोलिश्च सहजोलिस्त्रिधा मता । द. यो. शा. ५:७.६१

२. तस्यवाचकः प्रणवः । तज्जपस्तदर्थभावनम् ।। पा. योगसूत्र १.२७.७८

३. अङ्गेषु मातृकन्यासपूर्वं मन्त्रं जपन् सुधीः ।
यं कञ्चनाभिसिद्धयै स्यान्मन्त्रयोगः स कथ्यते ।
मृदुस्तस्याधिकारी स्णद् द्वादशाब्दैस्तुसाधनात् ।
प्रायेण लभते सिर्द्धि सिद्धीश्चैवाणिमदिकाः ।
अल्पवुद्धिरिमं योगं सेवते साधकाधमः ।
मन्त्रयोगो ह्ययं प्रोक्तो योगानामधमस्तु सः ।। दत्ता० योगशास्त्र २५.२८

Now let us come to the main subject of Amanaska Yoga which is known as Bhavatita Dhyana (Transcendental meditation) these days. This is also a very ancient branch of Yoga. According to Dattatraya this comes under the category of Laya-yoga which first preached by Adi Nath—the Lord Shiva.[1] Adi Nath had taught many ways (sanket) for meditation, one of which was such that it could be practised every where while standing or walking or sleeping or eating, by meditating in the Shoonya (mind having no aimed object to meditate upon—obserbed in vacant solitude).[3] This may be called as transcendental meditation.

This meditation shunya Dhyana-has been considered to be the most important in the Laya-yoga sadhana. It is said to the best of all the sadhanas. 'Amanaska Yoga' declares that one whose sight, breath and mind remain fixed and stablised without the support of their object is really a yogi and he alone can be the Preceptor (Guru) and is worthy to be served.[4]

Since mind is made defunct in this sadhana, by object-less and supportless concentration and no activity being left for the mind to do, it is called Amanaska Yoga. Amanaska literally means to become without mind.

The first reference of Amanaska Yoga is found in Mahabharat where in it has been stated that the sadhana, who without

---

१. गिरिकूटे चित्रकूटे सुपादपयुते गिरौ।
कृपयैकैकसंकेतं शंकरः प्राह तत्र तान्।
तानि सर्वाणि वक्तुं हि न शक्नोमि तु विस्तरात्
कानिचित् कथयिष्यामि सहजाभ्यासवत् सुखम्। दत्ता० योगशास्त्र ३६.३६

२. तिष्ठन् गच्छन्स्वपन्भुञ्जन्ध्यायन् शून्यमहर्निशम्।
अयमेको हि संकेतः आदिनाथेन भाषितः॥

३. ध्यानं निर्विषयंमनः। सांख्यदर्शन ६.२५

४. दृष्टः स्थिरा यस्य विनैव दृश्यात्।
वायुः स्थिरो यस्य विना प्रयत्नात्।
चित्तं स्थिरं यस्य विनावलम्बात्।
स एव योगी स गुरुः स सेव्यः॥ अमनस्क योग २.४६

contemplating on any subject or concentrating on any object, sitting in one posture gets into trance or transcendentness, achieves the position bey ond all dualitics—rightenousness and unrightenousness, good and bad, right and wrong.[1] Acharya Shanker has quoted this verse in the introduction of his commentory on Gita and has indicated towards Amanaska Yoga. It can therefore we well assumed that the Amanaska sadhana enjoyed a great repuration and respect even amongst the philosophers of the highest order.

In the Har avijaya Mahakavya (epic) of the great poet Ratnakar, Amanaka Yoga has been referred to at two places. At one piace without mentioning name of Amanaska Yoga, the poet has described the method of Sadhana and has stated that the sadhaka should medidate with mind in vacant solitude (Abhava) without any support of thought or object ; till he gets into tranae (the state of transcendentness).[2]

At one place mentioning name of the Amanaska Yoga, the poet has shown great respect to it when he has offered a prayer to Lord Shiva requesting the Lord to beston the same position—the Niranjanapada—which the sadhanas of Amanaska-Yoga get, by His grace.[3]

Though we find such references in many of the ancient works of sanskrit literature from which it can be inferiod, without any doubt, the antiqueness of the Amanaska Yoga and the high esteem it held, however, it is a matter of great regret that we could not find any work, which could be called as very ancient, on this subject.

---

१. नैवधर्मी न चाधर्मी न चैव हि शुभाशुभी।
य: स्यादेकासने लीन: मैव किंचिद्धि चिन्तयन्। भगवद् गीता शांकर भाष्य पृ० २

२. अभावं भावयेत्तावत् यावत् तन्मयतां व्रजेत्।
—हर विजय महाकाव्य

३. अमनस्कयोगगतिसंशितव्रतै:
यदवाप्यते किल निरञ्जनं पदम्।
निरुपल्लवां च दधदात्मनि स्थितिम्
भव नान्तरीयकमनुग्रहस्य ते ।। हर विजय महाकाव्य ६.१४३

The highest state of Asamprajnat Samadhi (super-conciousness described in the Ashtānga-Yoga Sādhanā of Patanjali, where in all flow of thoughts, reasoning, bliss and even ego do not exist (even the Vritti of Viveka Khyāti—the descriminative knowledge is checked), is also the highest state of Amanaska Yoga. On this basis an attempt can easily be made to prove the oneness of the Amanaska Yoga and the Patanjali Yoga. In the Patanjali's Ashtānga Yoga the philosophy and sādhanā aspects, both have been equally described, however to call the Patanjali Yoga Sūtra a work on Amanaska Yoga, will not be proper, as inspite of the highest state of Asamprajnāta Samādhi being same in both the systems, there is great difference in their methods of Sādhanā. In the Sādhanā process of Patanjali's Ashtānaga-yoga, the function of the mind, in relation to its objects (in refining in sublimating, in gradations) continues, which is evident from the definitions of Dhāranā (concentration), Dhyāna (meditation) and Samādhi (super-consciousness).[1]

In the tradition of Amanaska Yoga Sādhanā, we find only one book which the author has named as 'Swayambodha' or 'Amanaska Yoga. This does not appear to be an ancient work on the subject and we do not find the author's name there in, though Gorakhanātha, whose period is considered to be earlier than the nineth century, has been given the credit of being the author of this work by Yoganāth Swami. But from this the antiqueness of the book is not proved as it is doubted whether Gorakhanāth could be the author of this work. There are vehement attacks on different scriptures and systems of sādhanā in this book on Amanaska Yoga' which can be seen in the verses 33 to 38 of chapter II where in the Prānāyama sādhanā, awakening of the Nādi-chakras, jnāna yoga and Hathayoga Sādhanās and the

---

१. देशबन्धश्चित्तस्य धारणा । (Dhāraṇā is holding the mind on to some particular object). तत्र प्रत्यैकतानता ध्यानम् । (An unbroken flow of mindestuff on that object is Dhyana). तदेवार्थमात्रनिर्मासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः ॥

(When that, giving up all froms reflects only the thing itself; it is Samadhi.) पातंजल योगसूत्र ३.१,२,३

kriyās (practices) like vajroli etc. have been very badly and despisingly attacked and condemned. The different codes of conduct and the symbols of the Vaishnava, Jain, Bouddha etc. religions, their philosophies and traditions have been very adversely criticized and nullified without any reasoning and arguments and supremecy of the Amanaska Yoga declared. This has never been the style of ancient works on yoga or philosophy or literature. Therefore it is not possible to accept it as an ancient work.

The statement of Yogānāth swami declaring Gorakhanāth as author of Amanaska Yoga, does not have any supporting proof. We do not find author's name either in the Manglācharana (opening prayer) nor in the Pushpika (concluding verses). So far the question of accepting Gorakhanāth as author of Amanaska Yoga, according to the traditional sayings is concerned, we find that the 'Yoga-Bija' has also been similarly accepted, but we find clear contradictions in both these works. For example we see that in 'Yoga-Bija' the Suryabhed, Ujjāyi, Shītalī, Bhastrī Pranayamas have been mentioned with great respect,[1] but in the Amanaska Yoga the same have adversely attacked with disrespect.[2] Under these circumstances how Gorakhanāth could be accepted as author of both these works. Gorakhanath is considered to be the author of many works on Hatha Yoga, but in the Amanasha Yoga we find that the vajroli kriya of Hatha Yoga has been disgracefully despised. The question of the authorship of the Amanska Yoga may be closed here, keeping the possibility in view that the different sects and systems of yoga-sādhana have been in vogue since time immemorial in the Guru Shishya Parampara (traditions of the preceptor and the desciple). In those traditions either the Gurus for the convenience of their disciples or the disciples for sake of memorising, described the teachings of their yoga-sadhana traditions in slokas (verses). These slokas continued from one generation to another, of the sects of different yoga-sadhana traditions. When the necessity for keeping those compositions in writing arose on availability

1. See Yoga-Bija 96-105.
2. See Amanaskyog 2.32-33-34.

of the facilities for the purpose, the same were transcribed without mentioning the name of the author. After lapse of time the followers of the sects may have thought, out of their faith and reverence, to declare that 'such and such works are the compositions of so and so ancient Guru'. In reality many of such works may perhaps be the compositions of authors unknown.

According to 'Amanask Yoga' there are seven main elements or principles of this universe. They are earth, water, fire, air, sky, mind and Para-Tattva. These have been mentioned here in the order of the grosser elements to the finer ones successively. Out of them five of the elements from earth to sky are of Mahat parinama (Big size), which can be perceived and experienced by the senses. The mind (Manas) is also an object like the earth etc. which becomes the media of perceiving and experiencing the other objects, elements and principles through the senses. All these have been simply enumerated in this book and their analysis has not been given to explain their deep concept. The Para-tattva is beyond all the forms and formless, creation and destruction, assumptions and presumtions, cause and effect, names and titles, attributes and actions. That is unperceivable by the senses, it is permanent and eternal unaffected by any thing.[1] As the 'Para-tattva' is transcendent, its realisation automatically brings in the transcendentness, for which Dattatreya advises to meditate on the 'Para-tattva' at all times and every where even while standing, sitting, walking, sleeping or eating.[2] But the author of the 'Amanask-Yoga' advises that first of all one should fully understand the system of Amanaska Yoga directly from a competent perfect Guru, make himself free from all the worries, sit in a well established posture comfortably in a calm, quiet, beautiful place, keeping the object of concentration at a distance of full arm-length, fix attention on it with full concent-

1. भावाभावविनिर्मुक्तं विनाशोत्पत्तिवर्जितम् ।
सर्वसंकल्पनातीतं परतत्त्वं तदुच्यते ।
अनाकारमवच्छिन्नमग्राह्यमचलं ध्रुवम् ।
सर्वोपाधिविनिर्मुक्तं सर्वकामविवर्जितम् ॥ Amanaska Yoga 1.22

2. Dattatreya yoga Sastra 40-41.

ration and practise Amanaskata (Transcendentness).[1]

In the process of sadhana, the sadhaka should withdraw his mind from all the gross objects and free himself from all the worries and thoughts, externally as well as internally. When the sadhaka reaches that state and becomes established there in, he experiences the 'Para-tattva'. The chitta (mind-stuff) merges in the Prana, no knowledge of the outer world remains, transcendentness is achieved.[2] As a result of this, the sadhaka inspite of making use of all the sense organs, does not experience any pleasure or pain, heat or cold and other dualities. Though in the beginning this state of a Sadhaka remains for a very short period, but with practice and success in sadhana he continues to remain in this stage not only for some hours or days but even for years together. The different stages of success and gaining supernatural powers with progressive advancement in sadhana have been described in detail in the 'Amanaska Yoga'. In the event of gaining the state of 'Laya' (complete absorbation of the mind) even for a fraction of second, the sadhaka, in this very first state of transcendentness not only experiences 'Para-tattva', uplifts himself or rises above all the worldly enjoyments and involvements. Some interpret this 'uplifting of self' as 'rising of the body above the ground'. This 'state of rising of the body above the ground' comes in the Pranayama sadhana when the stage of 'Ghata-avastha' is gained and the Prana enters into the Sushumna Nadi and the Kundalini power is awakened. But that is a different process of Sadhana. The Pranayama Sadhana and the Amanaska Yoga or the transcendental

---

1. एवंविध गुरोः शब्दात् सर्वचिन्ताविवर्जितः ।
स्थित्वा मनोहरे देशे योगमेव सदाभ्यसेत् ॥
विविक्तदेशे सुखसन्निविष्टः समासने किञ्चिदुपेत्य पश्चात् ।
बाहुप्रमाणं स्थिरदृक् श्लथाङ्गः चिन्ताविहीनोऽभ्यसनं कुरुष्व ॥
Amanaska Yoga 1.27-28

२. न किञ्चिन्मनसा ध्यायेत् सर्वचिन्ता विवर्जितः ।
तत्त्वस्य सम्मुखे जाते त्वमनस्कं प्रजायते ॥
Amanaska Yoga. 1.32

meditation are both different systems of Sadhana.

In the context of this Sadhana a question arises that when first of all, the sadhaka concentrates on some object at a full arm-length, the mind should remain engaged on the object and not beyond the object and then how it could be transcendental. In this respect 'Amanaska Yoga' classifies that as an elephant returns back after passifying its desires, even without any prodding, in the same way the mind even without suppressing or forcefully withdrawing it, stops wandering and object pursuing, calms down and is absorbed (within self) if process of practice is continued.[1]

Explaining further the author of Amanask Yoga states that at first the sight of the sadhaka falls on some object and engages itself on that object or its particular part, remains fixed there on and is slowly absorbed.[2]

To reach this stage the Sadhaka will have to be constantly cautious and active to pierce through his tendencies of imagining, assuming, resolving, and desolating and dissolving. In the absence of these tendencies, the support of the mind gets feebler slowly and as a result of this the sight as well as the other sense organs become defunct. For this purpose the Sadhaka should be alert like a person weighing something on a balance who tries to keep the balancing stick or the needle in correct position so that both the sides of the balance remain parallel and equally balanced giving correct weight. Till such time the mind does not come in the state of equilibrium, like a balance, by subsiding and diminating the disturbing forces of desires, longings, attachments, repulsions, liking and hates, passions, pleasures and pains etc., the attainment of the state of transcendentness—the samadhi, will not be possible. In this context the author of Amanaska Yoga has declared the utility of unattachment and unconcernedness or dispassion as ambrosial. It has also been stated there in the Amanaska Yoga that till such time likings and desires for acquiring objects and dislikes for giving up same persist the activities of the mind continue unchecked in these directions and the

---

१ यथा निरङ्कुशो हस्ती कामान्प्राप्य निवर्त्तते ।
अवारितं मनस्तद्वत् स्वयमेव विलीयते । Amanaska Yoga 2.75

२ प्रथमं निःसृता दृष्टिः संलग्ना यत्रकुत्रचित् ।
स्थिरीभूता च तत्रैव विनश्यति शनैः शनैः ।। Ibid. 2.68

mind being so fully involved there in, the state of absolute absolvement, dispassion or unconcern cannot be imagined for the mind. Just as the alluring attachments are the cause of bndings for the mind, so also the despising dislikes result in bndings for the mind as in both the conditions the mind remains engrossed and there is no freedom for it. In such a state the ego-principle becomes all the more prominent, the dualities play the perilious game and the object realising the truth, get into oblivious. When the likes and dislikes, attachments and aversions are in complete equilibrium as in the weighing scale when the balance is made to stablise to give the correct weight, there remain no attractions and distractions for the mind and it is fully stablised, balanced and free from all the dualities, their pushes and pulls. Then the state of dispassion and unconcern is gained and by means of the sadhaka can make the deep-rooted tree of Sansar (world) fall.[1]

Thus by bringing the likes and dislikes attachments and aversions in equilibrium or eradicating them altogether and thereby attaining the state of dispassion and unconcern is the most important aspect of this Amanaska Sadhana. This is the way for gaining salvation.

This method of Sadhana is also one of the ancient branch of Yoga-sadhana like many other ones. Inspite of the fact that we get references about this system of Amanaska Sadhana in very important epical works like Mahabharat, Gita-Bhashya and Hara-Vijaya, the works on this subject itself, are still a matter for investigation research. There is, however, only one book available on the subject and though it is not very ancient (as the subject is considered to be), the system of sadhana given there in is of great importance. This is a subject which anticipates investigations and research.

Translation in English by—Bajrang Singh

---

१ यावत्प्रयत्नलेशोऽस्ति यावत्संकल्पकल्पना ।

अहं त्वमिति सम्प्राप्तिः तावत्तत्त्वस्य का कथा ॥

औदासीन्यामृतौघेन वर्धमानेन योगिनाम् ।

उन्मूलितमनोमूलो जगद् वृक्षः पतिष्यति ॥ Amanaska Yoga 2.58-59.

अमनस्क योग

कैलाश शिखरासीनं सर्वज्ञं सर्वगं शिवम् ।
वामदेवो मुनिश्रेष्ठः प्रणम्य परिपृच्छति[1] ॥१॥

कैलाश पर्वत के शिखर पर बैठे हुए सर्वज्ञ सर्वव्यापी भगवान् शिव को प्रणाम करके मुनिश्रेष्ठ वामदेव पूछते हैं।

1. The great Muni Vamadeva offers his obeisance to the omniscient and omnipresent Lord Shiva and asks him.

देवदेव महादेव सर्वानुग्रहकारक ।
जीवन्मुक्तिप्रदोपायं कथयस्व मम प्रभो ॥२॥

हे देवाधिदेव महादेव, सब पर कृपा करने वाले महाप्रभु, कृपया हमें वह उपाय बताइये, जिससे हमें जीवन्मुक्ति प्राप्त हो सके।

2. O Lord of the Lords ! Mahadeva ! you are the master supreme, showering blessings on all. Kindly tell us the way by which we can get 'Jivan-Mukti' (freedom from the cycles of birth and death.)

ईश्वर उवाच[2]

शृणु वत्स महाप्राज्ञ संसारार्णवतारकम् ।
अगम्यं सर्ववेदानां गोपितं सकलागमे[3] ॥३॥

हे अतिशय प्रज्ञावान् वत्स वामदेव, सभी वेदों द्वारा भी अगम्य समस्त आगम शास्त्रों में गोपित, संसाररूपी सागर को पार कराने का उपाय मैं तुमसे कहता हूँ, सुनो।

Ishwar :

---

१. ग पुस्तके नास्ति

२. ग पुस्तके एवं पठ्यते—

प्रणम्य परमात्मानं वामदेवः कृताञ्जलिः ।
जीवन्मुक्तिप्रदोपायं कथयस्वेति पृच्छति ॥२॥

महामुनि वामदेव हाथ जोड़कर भगवान् शिव को प्रणाम करके उनसे पूछते हैं कि कृपया मुझे वह उपाय बताइये जिससे जीवन्मुक्ति प्राप्त की जा सकती है।
प्रणम्य शिरसादेवं कृताञ्जलितुरुमापतिः। इति ख।

३. महादेव उवाच इति क. ४. ग पुस्तके नास्ति

3. O my son ! Vamadeva, you are a greatman of wisdom, I shall tell you the way, which is beyond the approach of the Vedas and is a secret for the scriptures, for crossing the great ocean of 'Sansar' (wordly life).

तदहं सम्प्रवक्ष्यामि तव संवीक्ष्य वासनाम् ।
अद्वैतं परमं चापि तव भक्तिमहैतुकीम्[1] ॥४॥

मैं तुम्हारी पूर्ववासना, हृदय में विद्यमान अद्वैतभाव और अहैतुकी भक्ति को देखकर उसका उपदेश करूंगा ।

4. Considering your desires of the past and present, the non-dualistic state of your mind and your selflessness in devotion, I shall preach you that (secret).

अस्त्येकस्तारको योगः सर्वयोगोत्तमोत्तमः ।
स एव द्विविधः प्रोक्तः पूर्वापरविभागतः[2] ॥५॥

सभी उत्तम योगों में भी उत्तम एक तारक योग है । उस योग के दो भेद हैं, पूर्वतारक योग और अपरतारक योग ।

5. The most superior to all the systems of yogas is the "Taraka Yoga.' 'Purva Tarka Yoga' and 'Apara Taraka Yoga' are the two divisions of this 'Tarka Yoga'.

पूर्वोक्तस्तारकस्तत्र; अमनस्कस्तथापरः ।
प्रथमं तु प्रवक्ष्यामि पूर्वमङ्गसमासतः[3] ॥६॥

इनमें प्रथम अर्थात् पूर्वतारकयोग को तारकयोग और द्वितीय को अमनस्क योग कहते हैं । इनमें से प्रथम मैं पूर्व अर्थात् तारकयोग का अङ्गों सहित संक्षेप में वर्णन करूंगा ।

6. The first of them—the Purva Taraka Yoga is known as 'Taraka Yoga' and the second one is called the 'Amanaska Yoga'. First I shall describe in brief the first one—the Tarka Yoga with all its parts.

सर्वमूर्तिमयं रूपं गुणैरिन्द्रियमानदम् ।
द्विधा कृतं मनोयुक्तं तारकं सर्वमानदम्[4] ॥७॥

---

१. पद्यमिदं ग पुस्तके नास्ति । 'भक्तिरहैतुकी' इति क
२. ख. ग. पुस्तकयोः पद्यमिदं नास्ति ।
३. ख. ग. पुस्तकयोः पद्यमिदं नास्ति ।
४. ख. ग. पुस्तकयोः पद्यमिदं नास्ति ।

यह योग गुणों के कारण सर्वमूर्तिमय स्वरूपवाला तथा इन्द्रियों को सुखदायक है। यह योग, जो दो प्रकार का वताया गया है, मनोयुक्त होने पर तारकयोग और मन के सम्वन्ध से रहित अतएव सर्वसारक अर्थात् समस्त दृश्यपदार्थों के सम्बन्धों से रहित द्वितीय अमनस्क योग कहलाता है।

7. This Yoga by its own virtues is pervading in all forms and provides joy to all the senses and it is said to be of two kinds. It is called Taraka Yoga when associated with the mind and is known as 'Amanaska Yoga' when dis-associated with the mind and the objective world.

तारे ज्योतिषि संयोज्य किञ्चिदुन्नमयन्भ्रुवौ।
पूर्वयोगस्य मार्गोऽयमुन्मनीकारकः क्षणात्[१] ॥८॥

दोनों चक्षुःतारकों अर्थात् नेत्रों को ज्योति में अर्थात् आज्ञाचक्रगत ज्योति में संयुक्त करके दोनों भौहों को कुछ उठाकर वहीं मन को स्थित करना प्रथम अर्थात् तारक योग की साधना का मार्ग है। इस साधना से अर्थात् दोनों भौहों के मध्य में स्थित आज्ञा-चक्र गत ज्योति का ध्यान करते हुए मन को एकाग्र करने से तत्क्षण उन्मनीभाव अर्थात् समाधि की प्राप्ति हो जाती है।

8. To concentrate the mind and in Ajna chakra between the eye-brows after slightly raising them up-word, is the 'Tarka Yoga', By this is gained the 'Unmani Bhava' (the state of transcendent-ness).

एष योगो मया प्रोक्तः पूर्वापरविभागतः।
सर्वमङ्गलसिद्ध्यर्थं[२] न देयो यस्य कस्यचित्[३] ॥९॥

पूर्वापर विभाग करते हुए जिस तारक योग का मैं कथन कर रहा हूँ वह समस्त प्रकार के मङ्गल की प्राप्ति के लिए किया जाता है, उसका उपदेश चाहे जिसको नहीं करना चाहिए।

9. This Taraka yoga about which I am telling you is practised to gain all types of welfare. It should not be preached to every one indiscriminately.

परं ज्ञानमहं वच्मि येन तत्वं प्रकाशते।
येन विच्छिद्यते सर्वं मोहपाशादि[४] बन्धनम्[५] ॥१०॥

---

१. ख. ग. पुस्तकयोः पद्यमिदं न पठ्यते। २. सिद्धार्थम् क.
३. ख. ग. पुस्तकयोः पद्यमिदं न पठ्यते। ४. आशापाशादि ख.
५. क. पुस्तके पद्यमिदं न पठ्यते।

इस तारक योग के रूप में मैं उत्तम से उत्तम ज्ञान का उपदेश दे रहा हूं; इससे समस्त मोह पाश आदि वन्धन कट जाते है, और साधक उनसे छूट जाता है।

10. In form of this Taraka yoga I am giving you the best of all the knowledge by which all the bonds of imfatuations are cost off.

आधारादिषु चक्रेषु सुषुम्णादिषु नाडिषु।
प्राणादिषु समीरेषु परतत्वं न तिष्ठति[1] ॥११॥

मूलाधार आदि चक्रों में सुषुम्ना आदि नाडियों में और प्राण आदि वायुओं में परतत्त्व नहीं है। अर्थात् मूलाधार आदि चक्रों के भेदन की साधना से सुषुम्ना आदि नाड़ियों के शोधन अथवा उनमें प्राण संचार से तथा प्राण अपान आदि वायुओं के नियमन का अभ्यास करने से परतत्त्व की प्राप्ति नहीं हो पाती।

11. The Paratattva (The supreme self) is not there in the chakras Muladhara etc, in the Nadis (nerves) like shushumna etc. and the vital breathing airs like Prane etc. (This means that Paratattva is not attainable by only piercing the chakras, purification of Nadis and controlling the prana, Apan etc).

तत्र योगरताः[2] केचित् केचिद् ध्यानविमोहिताः।
जपेन केचित् क्लिश्यन्ति नैव जानन्ति तारकम् ॥१२॥

परतत्त्व अथवा मोक्ष की इच्छा वाले कुछ लोग योग साधना में संलग्न रहते हैं, कुछ लोग ध्यान की साधना में ही भटके हुए है। कुछ साधक विविधमन्त्रों के जप करने में ही शरीर को क्लेश देते है, और वे तारकयोग को न जानने से ही भटकते और कष्ट उठाते रहते हैं।

12. Some aspirants desireous of realising the supreme self or gaining Moksha (salvation) engage themselves in Yoga-Sadhna, some practise meditation, some keep busy in Japa, recitation and repetation of the Mantras and different names of God, some undergo in Tapas, sufferings, bear pains and wander astray just because they have no knowledge of the Taraka Yoga.

केचिदागमजालेन केचिन्निगमसंकुलैः।
केचित्तर्केण मुह्यन्ति नैव जानन्ति तारकम्[3] ॥१३॥

---

१. पद्यमिदं क पुस्तके नास्ति

२. मन्त्रयोगरताः क. तत्त्व योगरता ग.

३. पद्यमिदं ख पुस्तके न पठ्यते।

कुछ मोक्षार्थी विविध आगमों (वैष्णव आगम, शैव आगम आदि) में कुछ निगमों (वेदों) के प्रपञ्च विस्तार में और कुछ तर्क प्रपञ्चों में फंस कर मोह जाल में फंसे रहते है, किन्तु तारक योग नहीं जान पाते।

13. Some aspirants keep busy in study of the different Agamas (the theological treatise and practical manuals of devine worships—like Vaishanava Agama, Saiva Agama and Shakta Agama), some remain perplexed in the Vastitude of the Nigmas (Vedas) and the others are entangled in enquiries and reasonings and all of them remain in bewilderment just because they do not know the 'Taraka Yoga'

तारकोऽयं भवाम्भोधौ तारको[1] गुरुशिष्ययोः।
तारकोन्मेषयुक्तत्वा[2]दपि तारकमुच्यते ॥१४॥

क्योंकि यह योग साधक को भवसागर से तार देता है, गुरु और शिष्य दोनों को ही तार देता है अर्थात् दुःख सागर से पार करा देता है, साथ ही इस साधना में तारक अर्थात् जन्ममरण के चक्र से छुटकारा दिलाने वाली कुण्डलिनी शक्ति का उन्मेष अर्थात् जागरण हो जाता है, अतः इसे तारक योग कहते हैं।

14. This Tarka yoga is named as such because it enables the Sadhaka the disciple and the teacher (Guru) both, to cross the ocean of 'Sansara' (the cycles of births and deaths) (The word 'Tarka means one who saves from drowning and sefely takes to the shore.)

न मीमांसा-तर्क-ग्रह-गणित-सिद्धान्त-पठनैः,
न वेदैर्वेदान्तैः स्मृतिभिरभिधानैरपि न च।
न चापिच्छन्दो व्याकरणकवितालंकृतिगणैः,
मुनेस्तत्वावाप्तिर्निजगुरुमुखादेव विहिता ॥१५॥

हे महामुनि वामदेव, तत्त्व का वोध अर्थात् तत्त्वज्ञान की प्राप्ति गुरुमुख से ही हो पाती है, मीमांसा शास्त्र तर्कशास्त्र ज्योतिष शास्त्र गणित शास्त्र अथवा सिद्धान्त अर्थात् धर्मशास्त्र के पढ़ने से नहीं है, और न वेद वेदान्त स्मृतियों अभिधान ग्रन्थों के अध्ययन से होती है, और न ही छन्द शास्त्र व्याकरण काव्य और अलंकार शास्त्र के अध्ययन से होती है।

---

१. तारणो ग., २. तारको कोशयुक्तत्वाद् ग

15. O great sage Vamadeva, the real knowledge is gained by listening directly from the mouth of the Guru (preceptor) and not by mere study of the philosophies, logic, astronomy, astrology, theology, Vedas, Vedanta, Smrities, Puranas, Epics, poetry, rheotori ctests, grammer and many other different subjects and scholarlyc ompositions.

काषायग्रहणं कपालधरणं केशावलीलुञ्चनम्,
पाखण्डव्रत-भस्म-चीवर-जटाधारित्वमुन्मत्तता ।
नग्नत्वं निगमागमादिषु कृता गोष्ठी सभाभ्यन्तरे,
सर्वं चोदरपूरणार्थनटनं[1] न श्रेयसः कारणम् ॥१६॥

गेरुवे वस्त्र पहनना, कपाल धारण करना (कापालिक वन जाना) केशों का लुंचन करना (जैन परम्परा में यति क्षौर न कराकर केशों का लुंचन करते हैं) पाखण्डी वनकर व्रत करना भस्म चीवर जटा धारण करना, उन्मत्त के समान व्यवहार करना, नग्न रहना, (नागा साधु या दिगम्वर जैन परम्परा) वेद पुराण आदि विषयों पर वड़ी-वड़ी गोष्ठी और सभाओं का आयोजन यह सभी प्रपञ्च उदर पूर्ति अर्थात् पैसा कमाने के लिए है, प्रपञ्च मात्र है, इनके द्वारा श्रेय लाभ नहीं हुआ करता ।

16. The real truth is not gained by simply putting on ochre dress (of an ascetic), bearing kapal (skull bones) pinching and pulling out hairs of head (in jain traditions hairs of head and beard etc. are not shaved with razor but are pinched and pulled out by hand only), Keeping fasts, becoming hypocrite, keeping long hairs and beard, behaving like lunatics, wandering naked, organising seminars and symposia (which are outword shows to satisfy the hungers for money, name fame etc.).

द्वेषोच्चाटन[2]मारणादिकुतुकै[3]र्मन्त्रैः प्रपञ्चोद्गमः[4]
सर्वाभ्यास[5]विचित्रबन्धकरणाद्यज्ञानयोगः परः[6] ।
ध्यानं देहपदेषु नाडिषु षडाधारेषु[7] चेतोभ्रमः
तस्मात्तत्सकलं मनोविरचितं त्यक्त्वाऽमनस्कं भज ॥१७॥

१. पूरणाय पठनं क. पूरणार्थं पठनं ख.
२. रक्षोच्चाटन० ख. ३. कुहुकैः क.
४. प्रपञ्चोद्गमैः खः प्रपञ्चो हतः ग ५. पूर्णाभ्यास० घ.
६. संज्ञानभोगः परः खः, अज्ञानभागोऽपरः ग०, अज्ञानबोधिः परम् घ.
७. षडाधारे च क. ।

द्वेषवश उच्चाटन मारण आदि क्रियाओं वाले मन्त्रों से प्रपञ्चों की ही उत्पत्ति होती है, तथा इन सबके अभ्यास से एवं विविध प्रकार के वन्धों के करने से अज्ञान की ही वृद्धि होती है। इसी प्रकार देह के विविध भागों में ध्यान करने अथवा नाडियों इडा पिङ्गला सुषुम्ना आदि नाडियों, मूलाधार आदि छः चक्रों में ध्यान से चित्त को भ्रम ही होता है कोई विशेष लाभ नहीं होता अतः यह सभी साधना प्रपञ्च मन की कल्पना मात्र है, इसलिए उसे छोड़कर अमनस्क योग को ही अपनाना चाहिए।

17. The use of the Mantras (mystic sounds and words) for separating from and getting rid of the enemies or for killing them. out of aversion and avarice creats and spreads illusons and ignorance. So also is the case in practising the Bandhas (the practice of Hatha yoga), concentrating and meditating on the different. parts of the body, the chakras like Muladhar etc. the Nadis like Ida Pingala, as all these practices are of no advantages, they creat more doubts, suspicions and illusions. All these are imaginations of the mind and therefore should be given up and only the Amanaska Yoga should be practised.

अन्ये च जगतो भावा ये च तिष्ठन्त्यनेकधा।
तेषां तु लक्षणेनापि[1] परतत्त्वं न मीयते[2] ॥१८॥

इसी प्रकार विश्व के विविध भाव, जो अनेक प्रकार से प्रगट हैं, उनके लाखों का समूह मिलकर भी परतत्त्व की समानता नहीं कर पाता।

18. In the same way there are different ways, means and thoughts. of schools in this world If millions of them are combined, they cannot match the 'Paratattva' (the supreme self—Absolute and Eternal).

व्योमादिभूतनिर्मुक्तं बुद्धीन्द्रियविवर्जितम्।
त्यक्तं चिन्तादिभिर्भावैः परतत्त्वं तदुच्यते[3] ॥१६॥

परतत्त्व आकाश आदि पांच महाभूतों से पृथक् है, वह बुद्धि इन्द्रिय आदि से रहित है, तथा चिन्ता आदि भाव भी उसमें व्याप्त नहीं होते।

---

१. लक्षकेणापि क. ख. २. न उच्यते ग

३. एतत्पद्यस्थाने एवं पठ्यते—क पुस्तके—

अथाहं वच्मि मोक्षाय ज्ञानरागजितां नृणाम्।
निष्कलं निष्प्रपञ्चं च परतत्त्वं तदुच्चते॥

19. The Paratattva is beyond all the five elements or Principles like sky, air etc, is beyond the intellect and senses and is free from all feelings and thoughts.

यस्मादुत्पद्यते सर्वं यस्मिन्त्सर्वं प्रतिष्ठितम् ।
यस्मिन्विलीयते सर्वं परतत्त्वं तदुच्यते ॥२०॥

परतत्त्व उसे कहा जाता है, जिससे यह समस्त विश्व उत्पन्न होता है, जिसमें प्रतिष्ठित होता है, और जिसमें अन्त में विलीन हो जाता है।

20. The Paratattva is that from which this entire universe originates, remains in existense and is eventually dissolved in.

भावाभावविनिर्मुक्तं विनाशोत्पत्तिवर्जितम् ।
सर्वसंकल्पनातीतं परतत्त्वं तदुच्यते ॥२१॥
अनाकारमवच्छिन्नमग्राह्यमचलं ध्रुवम्
सर्वोपाधिविनिर्मुक्तं सर्वकामविवर्जितम् ॥२२॥

जो भाव और अभाव से मुक्त, उत्पत्ति और विनाश रहित, समस्त कल्पनाओं से परे, आकार रहित सर्वव्यापक किन्तु इन्द्रिय आदि से अग्राह्य अचल कूटस्थ, सभी उपाधियों से रहित और सभी कामनाओं से रहित है, वही परतत्त्व कहा जाता है।

21-22. The Paratattva is that which is beyond all existence-menifest and unmanifest, eternal, imperishable, undestructable, free from birth and death, inexplicable and incomprehensible by the senses, all pervading and immanent, nameless and formless and having no desires at all.

प्रथमं पृथिवीतत्त्वं जलतत्त्वं द्वितीयकम् ॥
तेजस्तत्त्वं तृतीयं च[१] वायोस्तत्त्वं चतुर्थकम् ॥२३॥
आकाशः पञ्चमं तत्त्वं मनः षष्ठमुदाहृतम्[२] ।
सप्तमं परमं तत्त्वं यो जानाति स मोक्षभाक् ॥२४॥

कुल तत्त्व सात हैं : इनमें प्रथम पृथिवी तत्त्व, द्वितीय जल तत्त्व, तृतीय अग्नि तत्त्व, चतुर्थ वायु तत्त्व, पांचवां आकाश तत्त्व, छठा मनस्तत्त्व और सातवां परमतत्त्व है, जो उन्हें जान लेता है, वह मोक्ष को प्राप्त कर लेता है।

23-24. There are saven Tattvas (elements or principles) earth,

१. स्यात् ग. २. उदीरितम् क. ख.

water, fire, air sky, mind and the self-supreme (paratattva) and on knowing them all one gets the salvation.

परंतत्त्वं मयाऽऽख्यातं जन्म बन्धविनाशनम् ।
तस्याभ्यासं प्रवक्ष्यामि येन संजायतेः लयः[१] ॥२५॥

जन्म वन्धन से मोक्ष देने वाले जिस परतत्त्व का मैंने कथन किया है, अग्रिम पंक्तियों में उसके अभ्यास का कथन किया जाएगा, जिससे लययोग की सिद्धि होती है।

25. The knowledge of the supreme self which provides salvation the freedom from the cycles of birth and death, as already mentioned, can be gained by the method I shall now describe and by which perfection in laya-yoga is also achieved.

दृष्टिः स्थिरा यस्य विनैव दृश्यात्
वायुः स्थिरो यस्य विना प्रयत्नात् ।
चित्तं स्थिरं यस्य विनावलम्बात्
स एव योगी स गुरुः स सेव्यः[२] ॥२६॥

जिसकी दृष्टि विना दृश्य के स्थिर है, प्राण विना प्रयत्न के स्थिर है, और चित्त विना आश्रय के स्थिर है, वह योगी है और उसे गुरु मानकर परतत्त्व की प्राप्ति के लिए उसका ही आश्रय लेना चाहिए।

26. One whose sight, breath and mind remainfully stablised without their objects of seeing (scene) breathing (air) and support (forms and modifications) respectively, is really a yogi and he alone can be a preceptor (Guru), worthy to be served.

एवंविध गुरोः शब्दात् सर्वचिन्ताविवर्जितः ।
स्थित्वा मनोहरे देशे योगमेव सदाभ्यसेत्[३] ॥२७॥

इस पूर्वोक्त प्रकार के गुरु के मुख से साधना मार्ग का उपदेश लेकर समस्त चिन्ताओं से रहित होकर मनोहारि स्थान में स्थिर होकर निरन्तर योग कर अभ्यास करे।

---

१. क. ख पुस्तकयोः पद्यमिदं न पठ्यते ।
२. पद्यमिदं ग पुस्तके न पठ्यते ।
३. इदमपि पद्यं ग पुस्तके न पठ्यते ।

27. By acquiring knowledge of Sadhana (system of practice), di.ectly through the mouth of Guru, as described above, one should practise it regularly and constantly residing in some good beautiful place (conducive to sadhana), after freeing himself from all the worries.

विविक्तदेशे सुखसन्निविष्टः,
समासने किञ्चिदुपेत्य पश्चात् ।
बाहुप्रमाणं स्थिरदृक् श्लथाङ्गः[१]
चिन्ताविहीनोऽभ्यसनं कुरुष्व ॥२८॥

गुरु से उपदेश प्राप्त करने के अनन्तर एकान्त स्थल में सुव्यवस्थित आसन पर सुख पूर्वक बैठकर बाहु प्रमाण की दूरी पर किसी एक लक्ष्य अर्थात् ध्यान के लक्ष्य को निर्धारित करके समस्त अंगों के तनाव को दूरकर अर्थात् शिथिल और स्थिर अंगों वाला और समस्त चिन्ताओं से मुक्त होकर उस लक्ष्य पर दृष्टि को स्थिर करते हुए अमनस्कता का अभ्यास करना चाहिए ।

28. After that the sadhaka should sit in a well established posture comfortably with the body and mind fully relaxed from all tensions and worries. Then keeping the object of concentration at a distance of full arm-length, he should fix attention on it with full concentration and practise Amanaskta (transcendent-ness).

सुखासने समासीनस्तत्त्वाभ्यासं समाचरेत् ।
सदाभ्यासेन तत्कुर्यात्परतत्वप्रकाशनम्[२] ॥२९॥

साधक को चाहिए कि सुखद आसन में बैठकर तत्त्व साक्षात्कार का अभ्यास करे, और निरन्तर अभ्यास के द्वारा परतत्त्व का प्रकाशन अर्थात् साक्षात्कार करे ।

29. The sadhaka should practise to realise the Tattvas[1] first and there after the paratattva (the supreme-self).

---

१. स्थिराङ्गः क.ख.

२. परं तत्त्वं प्रकाशते ख

३. सर्वभूतमयं ग,

ब्रह्माण्डं पञ्चभूतस्थं पञ्चभूतमयी तनुः ।
सर्वभूतमियं[1] चेदं[2] त्यक्त्वा नास्तीति भावयेत्[3] ॥३०॥

समस्त ब्रह्माण्ड पांच महाभूतों में स्थित है, यह शरीर भी पञ्चभूतमय है, और यह सब जो कुछ दृष्टिगत हो रहा है, भूतमय है, अतः इन सबको छोड़कर परम-तत्त्व पञ्च भूतमय नहीं है, अथवा वे पञ्चभूत अवास्तविक हैं, ऐसी भावना करे ।

30. The entire universe is made up of the five gross elements and our body is also composed of these five elements. All that which is seen, is nothing but the gross form of the five elements only and should, therefore, be given up. The 'Supreme Self' is beyond all the elements and the Sadhaka should contemplate and realise this Truth.

न किञ्चिन्मनसा ध्यायेत्सर्वचिन्ताविवर्जितः ।
स बाह्याभ्यन्तरे योगी जायेत तत्वसम्मुखः ॥३१॥

साधक मन से किसी भी पदार्थ का ध्यान न करे, और वह बाहर अन्दर सभी चिन्ताओं से मुक्त हो जाए। ऐसा अभ्यास कर लेने पर योगी परतत्त्व के सम्मुख पहुंच जाता है ।

31. The sadhaka should not think of or meditate upon any object, external or internal, keep himself free from all the worries. When the yogi is established in this practice, he reaches the Paratattva (supreme self).

तत्त्वस्य सम्मुखे जाते त्वमनस्कं[4] प्रजायते ।
अमनस्केऽपि संजाते चित्तादि[5]विलयो भवेत् ॥३२॥
चित्तादि[6]विलये जाते पवनस्य लयो भवेत्[7] ।
मनः पवनयोर्नाशाद् इन्द्रियार्थान्विमुञ्चति ॥३३॥

---

१. सर्वभूतमयं ग
२. चेति क, वेति ख.
३. चिन्तय क
४. पुस्तके 'तु' नास्ति
५. चिन्तादि ख
६. चिन्तादि ख
७. ख पुस्तके चरणद्वयं नास्ति
८. इन्द्रियार्थम् क. ख.

इन्द्रियार्थैर्यदा मुक्तो बाह्यज्ञानं न जायते।
बाह्यज्ञाने विनष्टे च ततः सर्वमयोभवेत् ॥३४॥

परतत्त्व की सम्मुखता सिद्ध हो जाने पर, अमनस्कभाव सिद्ध हो जाता है तथा अमनस्कता सिद्ध होने पर चित्त आदि अन्तःकरणों का विलय हो जाता है। चित्त आदि का विलय होने पर प्राण स्थिर हो जाते हैं, और प्राणों का विलय हो जाने पर इन्द्रियों का विषय से सम्पर्क समाप्त हो जाता है, जिसके फलस्वरूप साधक को बाह्य पदार्थों का ज्ञान नहीं होता है, तथा बाह्य पदार्थों का ज्ञान न होने पर उसमें सर्व समभाव आ जाता है, जिसके फलस्वरूप राग द्वेष आदि का उदय कभी होता ही नहीं।

32-33-34. On reaching the Paratattva, the perfection in transcendentness is gained and consequently, in succession, the sadhaka's 'chitta' (mind stuff, etc. are dissolved, the Prana is stablised, the senses totally lose their contact with the objects, he no more possesses outword conciousness and realises oneness with all.

यदा सर्वसमो जातो[1] भवेद् व्यापारवर्जितः।
पर ब्रह्मणि[2] सम्बन्धो[3], योगी प्राप्तलयस्तथा ॥३५॥

साधक में सर्व समता का उदय होने पर उसकी समस्त क्रियाएं शान्त हो जाती हैं, परब्रह्म से उसका सम्बन्ध स्थापित हो जाता है, और वह उसमें लय को प्राप्त हो जाता है।

35. With this realisation of oneness with all, the sadhaka's all activities calmdown and cease, he establishes his relationship with Brahma and becomes an enlightened saint merged in Brahma.

सदाभ्यासरतानां च परो यो जायते लयः।
तस्याहं कथयिष्यामि[4] लक्षणं मुक्तचेतसाम्[5] ॥३६॥

---

१. सर्वसमे जाते क. ख.

२. परे ब्रह्मणि ख

३. सम्पन्नो क. सम्पन्नः ख.

४. सम्प्रवक्ष्यामि क. ख.

५. मुक्तचेतसाः क. ख.

निरन्तर अभ्यास में लगे हुए साधक को परब्रह्म में जो लीनता प्राप्त होती है, अग्रिम पंक्तियों में उसका लक्षण कहा जा रहा है, यह लक्षण ही मुक्तचेता योगी का भी लक्षण है।

36. A sadhaka engaged in constant regular practice, gets absorbed in Brahma, the features of which I shall now describe, these features hold good for a 'Mukta Cheta yogi' (a free and enlightened soul.)

सुखदुःखे[1] न जानाति शीतोष्णौ[2] न च विन्दति ।
विचरंश्चेन्द्रियार्थेषु[3] न वेत्ति च लयं[4] गतः ॥३७॥

परब्रह्म में लय को प्राप्त योगी को न सुख-दुःख का अनुभव होता है, और न शीत उष्ण का अनुभव होता है, वह इन्द्रियों के विषयों में विचरण करता हुआ भी उनका अनुभव नहीं करता है।

37. A yogi absorbed in Paratattva (supreme self) neither suffers from sorrows nor pleased with pleasures, he remains unaffected from the heat and cold and feels nothing even while enjoying the sense objects through his sense organs.

न जीवन्न मृतो[5] वापि न पश्यति न मीलति ।
निर्जीवः काष्ठवत्तिष्ठेल्लयस्थः सो[6]ऽभिधीयते ॥३८॥

जो साधक इस स्थिति में है कि उसे न जीवित कहा जा सकता है और न मृत, जो न तो देख रहा न उसके नेत्र बन्द हैं, जो निर्जीव काष्ठ के समान स्थिर हैं, उसे लय अवस्था में विद्यमान कहा जाता है।

38. A sadhaka who has reached that stage which can neither be called dead nor alive who is neither seeing nor his eyes are closed, who is fully stablised and motionless like a log, is stated to have attained the 'Laya-awastha' (the state of transcendentedness).

निर्वातस्थापितो दीपो भासते निश्चलो यथा ।
जगद्व्यापारनिर्मुक्तस्तथा योगी लये स्थितः[7] ॥३९॥

---

१. सुखं-दुःखं क. ख. ग.
२. शीतोष्णं क. ख.
३. विचारं चेन्द्रियार्थानां क. ख.
४. चेष्टा विलयं ख. वेत्ति विलयं क.
५. न च जीवन्मृतो ख.
६. च क. ख.
७. लयं गतः क. ख.

वायु की गति से रहित स्थान में स्थापित दीपक जिस प्रकार निश्चल रूप से भासमान् होता है, उसी प्रकार लय अवस्था में विद्यमान् योगी संसार के व्यापार से निर्मुक्त दिखाई पड़ता है।

39. Just as the flame of a lamp burns steadily, free from any flickering in a airless place, in the same way, the . ogi, in his state of transcendentness, appears free from all the activities of the world.

यथा वातैर्विनिमुक्तो निश्चलो निर्मलोर्णवः[1]।
शब्दादिविषयैस्त्यक्तो लयस्थो दृश्यते तथा[2] ॥४०॥

जिस प्रकार, वायु वेग न रहने की स्थिति में समुद्र पूर्ण निश्चल और निर्मल दिखाई देता है, उसी प्रकार लय अवस्था में विद्यमान् योगी शब्द आदि इन्द्रिय विषयों से सर्वथा अलग अर्थात् उनके सम्पर्क से पूर्णतः रहित शान्त दिखाई देता है।

40. Just as the Ocean remains absolutely calm and pure in the windless atmosphere, in the same way, a yogi in his state of transcendentedness remains free and away from the objects of senses like sound etc.

प्रक्षिप्तं लवणं तोये क्रमाद् यद्वद् विलीयते।
मनोऽप्यभ्यासयोगेन तद्वद् ब्रह्ममयं भवेद्[3] ॥४१॥

जिस प्रकार जल में डाला हुआ नमक क्रमशः जल में विलीन हो जाता है, उसी प्रकार अभ्यास करते-करते योगी का मन भी ब्रह्ममय अर्थात् ब्रह्म में लीन हो जाता है।

41. Just as the salt, when put into water, dissolves water and becomes one with it, in the same way a yogi is fully absorbed in Brahma (and becomes one with Him loosing his own identity) by sadhana.

यथा क्षारमयत्वेन[4] प्राप्नोति[5] लवणं स्वकम्।
ब्रह्मज्ञानमयत्वेन निर्वाणं मनसः तथा ॥४२॥

जिस प्रकार जल में विलीन होने पर लवण का अपना स्वरूप क्षारमयता में प्राप्त

---

१. निर्मलः परः ग. २. तदा ख.
३. चित्तादि विलये जाते पवनस्य लयो भवेत् ख.
४. क्षीरमयत्वेन ग. ५. प्राप्यते ग.

होता है, उसी मन का अपना स्वरूप विलय की स्थिति में ब्रह्मज्ञानमयता में प्राप्त होता है; अर्थात् मन का ब्रह्मज्ञानमय हो जाना ही उसका लय अथवा निर्वाण (मन का निर्वाण) कहा जाता है।

42. Just as the salt on dissolving in water retains its form of saltness; in the same way, the mind on absorption gains its real form of 'Brahma-jnana-mayata' (the full enlightment of being Brahma).

घृतात्पृथक्तारहितं घृते लीनं घृतं यथा।
तत्त्वे लीनस्तथा योगी पृथग्भावं न विन्दति ॥४३॥

जिस प्रकार घृत में लीन घृत उससे पृथक् सत्ता नहीं रखता अर्थात् लय होने के बाद उस घृत में पृथग्भाव नहीं रह जाता; उसी प्रकार परम तत्त्व (ब्रह्म) में लीन होने पर योगी का भी ब्रह्म से पृथग्भाव नहीं रह जाता।

43. Just as the butter mixed in the butter does not hold back its separate identity(becomes one with the other in name and form), in the same way, a yogi absorbed in Brahm has no separateness from Brahma (and becomes one with Brahma).

निमेषेण श्वासपलैः[१] नाडीभिः प्रहरैः दिनैः।
मासैः संवत्सरैः कालैः लयस्थो तत्परं[२] व्रजेत् ॥४४॥

लय अवस्था को प्राप्त योगी निमेष अर्थात् एक वार पलक गिरने में जितना समय लगता है, उतने समय की अवधि, श्वास समूह अर्थात् एक वार श्वास लेने में लगने वाले समय की अवधि पल २४ सेकेण्ड, नाड़ी अर्थात् एक घटी, या २४ मिनट की समय-अवधि, पहर, दिन, महीना और वर्ष इस प्रकार क्रमशः लय को प्राप्त योगी उत्कर्ष को प्राप्त करता जाता है। तात्पर्य यह है कि पहले लय अत्यन्त न्यून समय के लिए होता है, किन्तु अभ्यास करते रहने से लय की अवधि महीने अथवा वर्ष भर ही नहीं कई वर्षों के लिए हो जाती है, और योगी लय के उत्कर्ष पर पहुंच जाता है।

44. When the yogi attains the state of 'Laya' (the transcendentedness—remaining absorbed in Brahma) its duration is very short in the beginning, which starts from a 'Nimish' (twinkle—the time normally taken in the falling and ri ing of eye lids) and gradually

---

१. श्वासपलतोः ख. श्वासपटलैः ग.

२. अथपरं ख. यत्परं क. ग.

increases to the time normally taken in one inhalation and exhalation of breath and them to one 'Pal' (24 seconds), and increases on to one 'Ghati' (24 minutes), a day, and days, a month and months, a year and years (gradually and successively as the sadhana continues progressing successfully).

श्वासोच्छ्वासात्मकः प्राणः प्राणैः षड्भिः पलं स्मृतम् ।
पलैःषष्टिभिरेव स्यात् घटिकाकालःसम्मतः[१] ॥४५॥

एक श्वास-उच्छवास में जितना समय लगता है, उसे प्राण कहते हैं, छ प्राणों का एक पल कहाता है, तथा साठ पलों की एक घटी मानी जाती है।

45. The time taken in one inhalation and exhalation is called 'Prana', six 'Pranas' constitute a 'pala' and six 'pala' make 'Ghati'.

योगी निमेषमात्रेण लयेन लभते ध्रुवम् ।
स्पर्शनं परतत्त्वस्याप्युत्थानं च पुनः पुनः । ४६॥

योगी निमेष मात्र के लिए जब लय अवस्था को प्राप्त होता है, तब उसे निश्चय ही परतत्त्व का स्पर्श हो जाता है, अर्थात् परतत्त्व का किञ्चित् साक्षात्कार होता है, और पुनः पुनः उसमें परतत्त्व (ब्रह्म) के ज्ञान का उत्थान होता रहता है।

46. When a yogi attains the state of 'Laya' (transcendentedness) even for a 'Nimish' (twinkling), he gains contact with the Paratattva (supreme self-Eternal) and later this contact continues to increase.

घर्मःशान्तिः[२] प्रजायेत मुहुर्निद्रा च मूर्च्छनात् ।
निमेषषट्कमात्रेण लयेनान्तस्थयोगिनः ॥४७॥

योगी का मन जब छ निमेष काल के लिए परतत्त्व में लय को प्राप्त हो जाता है, तो सर्वप्रथम स्वेद प्रारम्भ होता है, उसके अनन्तर अपूर्व शान्ति का अनुभव होता है, तथा बारम्बार मूर्च्छा के साथ निद्रा की प्राप्ति होती है।

47. When the mind of the yogi remains absorbed in the state of Laya (transcendentness) for six 'Nimesha', first of all perspiration

---

१. काल सम्मत क.; काल सम्मिता ग.

२. घर्म शान्तिः क. ख.

starts and thereafter, he experiences unique peace and with repeated trances enters into sleep.

श्वासमात्रलयेनापि तेन प्राणादिवायवः ।
श्वासप्रवाह् सम्बन्धात् स्वे स्वे स्थाने वहन्ति ते ।।४८।।

योगी का मन जब एक श्वास काल परिणाम तक परतत्त्व में लीन हो जाता है, तब श्वास प्रवाह् से सम्वन्धित प्राण अपान समान उदान और व्यान वायु भी अपने स्थान में केन्द्रित हो जाते हैं।

48. When the mind of the yogi remains absorbed in paratattva for one inhalation and exhalation all the Pranas (prana, Apana, Samana, Udana and Vyana) connected with the breathing remain concentrated at their own places.

श्वासद्वयलयेनापि कूर्मनागादिवायवः[१] ।
निवर्त्तन्ते च धातूनां बन्धं कुर्वन्ति धातुगाः[२] ।।४९।।

योगी के मन का लय जब दो श्वास काल तक के लिए होने लगता है, तब विविध धातुओं में विद्यमान नाग कूर्म कृकल देवदत्त और धनंजय वाय स्थिर हो जाते हैं, और सभी धातुओं को स्थिरता प्रदान कर देते हैं।

49. When the mind of the yogi remains absorbed for twice the time taken in one inhalation and exhalation, the other Pranas (the airs vix Naga, kurma, krikara, Devadatta, Dhananjaya) remain stablized in their concerned elements.

चतुश्श्वासलयेनापि सप्तधातुगताः रसाः[३] ।
रसपुष्टिं प्रकुर्वन्ति धातूनां समवायतः[४] ।।५०।।

योगी का मन जब चार श्वास काल तक के लिए लय होने लगता है, तब सातों धातुओं में विद्यमान रस समन्वित होकर धातुओं के रसों को पुष्टि प्रदान करता है।

50. When the mind of the yogi remains absorbed in Paratattva for the duration of four 'pranas' (four times, the normal breathing

---

१. सप्त धातुगताः रसाः ग.
२. समे पुष्टि प्रकुर्वन्ति धातूनां समवायतः । ग.
३. स्वासनस्थो न विद्यते । ग.
४. स्वल्पश्वासो भवेद् योगी स्वल्पोन्मेषयुतस्तथा । ग.

period of inhalation and exhalation), the essence of all the seven elements are coordinated and nourish all the elements.

लयेन पलमात्रेण चासनस्थो न खिद्यते[1]।
स्वल्पश्वासो भवेद् योगी स्वल्पोन्मेषयुतस्तथा[2] ॥५१॥

योगी का मन जब पल मात्र तक परतत्त्व में लीन होने लगता है, तब वह आसन पर विद्यमान रहते हुए किसी प्रकार की पीड़ा का अनुभव नहीं करता, उस समय उसके श्वास-प्रश्वास और निमेष उन्मेष की क्रियाएं भी अत्यन्त अल्प हो जाती है।

51. When the mind of the yogi remains absorbed in Paratattva for one 'Pala' (six paranas), he does not experience any pain while sitting in a posture (Asana) and his breathing and twinkling of eyes are very much reduced.

पलद्वयलयेनापि[3] हृन्नादोच्चालनं[4] भवेत्।
अनाहतः स विज्ञेयः तत्रैव विन्यसेन्मनः[5] ॥५२॥

जब योगी का मन दो पल तक परतत्त्व में विलीन होने लगता है, तब उसके हृदय में नाद का उदय होता है, इस नाद को अनाहत नाद कहा जाता है, योगी को चाहिए कि इस अनाहत नाद का उदय होने पर अपने मन को उसमें ही स्थिरता प्रदान करे।

52. When the mind of the yogi is absorbed in Paratattva for two Palas', there arises a cosmic sound known as 'Anahata-Nada' in his heart. The yogi should try to stablise his mind in that sound.

चतुःपलप्रमाणेन लयेनानुभवो भवेद्।
अकस्मान्निपतत्येव शब्दःकर्णे शुभप्रदः[6] ॥५३॥

जब योगी का चित्त चार पल तक परतत्त्व में लीन रहने लगता है, तब उसे यह अनुभव होता है, कि उसके कान में शुभ शब्द अकस्मात् अर्थात् शब्द के कारण के न रहने पर भी, सुनाई पड़ने लगते हैं।

53. When the mind of the yogi remains absorbed in Paratattva for four Palas, there arises listening of auspicious words in his ears unexpectedly.

---

१. कूर्मनागादिवायवः। गः
२. निवर्त्तन्ते च धातूनां वृद्धि कुर्वन्ति धातवः॥ ग.
३. कृतेनापि ग.
४. हृन्नाडयाश्चलनं ख., हृन्नाडयाश्चालनम् घ.
५. मनस्तत्रैव विन्यसेत्। घ.
६. शब्द स्यात् शुभाशुभम् ख.

पलाष्टकलयेनापि कामस्तस्य निवर्त्तते।
कदापि[1] नैव जायेत कामिन्यालिङ्गितस्य च ॥५४॥

आठ पल तक परतत्त्व में चित्त का लय होने की स्थिति में योगी के अन्तःकरण से काम भावना की पूर्ण निवृत्ति हो जाती है, यहां तक होता है कि किसी कामिनी (काम वासना से परिपूर्ण स्त्री) द्वारा आलिङ्गन करने पर भी योगी में कामवासना का उदय नहीं होता।

54. When the yogi's mind is absorbed in 'Paratattva' for eight 'Palas', he is freed from all the passions and desires so much so that even if a very handsome damsel embraces him in a passionate way, there arise no sexual stimulation in him.

कलापादलयेनापि सुषुम्नां यान्ति वायवः[2]।
तदा पश्चिममार्गेण[3] आशु शुद्ध्यन्ति वायवः[4] ॥५५॥

जब योगी का चित्त परतत्त्व में एक घटी के चतुर्थांश भाग तक अर्थात् पन्द्रह पल तक लीन होने लगता है, तब सभी वायु (प्राण) सुषुम्ना में प्रविष्ट हो जाते हैं, और पश्चिम मार्ग में प्राणों का प्रवाह होने से अति शीघ्र वायु (वायुमार्ग अर्थात् नाड़ियों) की शुद्धि हो जाती है।

55. When the mind of the yogi remains absorbed in Paratattva for one fourth of a Ghati (fifteen Palas) all the 'Pranas' enter Sushumna and with the flow of the 'Pranas' thus taking a course, all the Nadis (nerves, veins, vessels, ducts etc.) are cleaned and purified.

घटिकार्धलयेनापि शक्तिः कुण्डलिनी परा[5]।
मनोवातविरोधेन जगत्याधारसंस्थिता[6] ॥५६॥

---

१. तथापि ख. ग.
२. सुषुम्ना मार्गवाहिनी गः
३. सुषुम्नावदने गत्वा ख. कायपश्चिम मार्गेण ग.
४. तस्य भोगन गच्छति क. तस्य भागे न गच्छति ग।
५. शक्तिः संचलते ध्रुवम्। क.
६. ऊर्ध्वं पश्चिममार्गेण वातरोधेन जाग्रति। घ.

आधी घड़ी अर्थात् बारह मिनट पर्यन्त जब योगी का मन परतत्त्व में लीन रहने लगता है, तब वायु और मन का निरोध हो जाने से मूलाधार चक्र के पास स्थित परा कुण्डलिनी शक्ति जागृत हो जाती है।

56. Wheb the mind of the yogi remains absorbed in Paratattva for half a Ghati (twelve minutes of breathing mind stops) functioning and stablises with the result, the Kundalini shakti' situated in Muladhara (sacral plexus) is awakened.

कलामात्रलयेनापि शक्तिः सञ्चलति ध्रुवम्[1]।
ऊर्ध्वं पश्चिमगामेण वातरोधेन जायते[2] ॥५७॥

जब योगी का चित्त एक कला (एक घड़ी) अर्थात् चौबीस मिनट तक परतत्त्व में लीन रहने लगता है, तो कुण्डलिनी शक्ति चलने लगती है, अर्थात् ऊपर की ओर उठने लगती है, और पश्चिम मार्ग अर्थात् मेरु दण्ड के अन्दर ऊपर जाने लगती है, ऐसा प्राण निरोध के कारण होता है, अर्थात् पहले प्राण निरोध होता है, और फिर कुण्डलिनी का उत्थान प्रारम्भ हो जाता है।

57. When the mind of the yogi remains absorbed in paratattva for one kala (one Ghati—24 minutes) the 'Kundalini-shakti' starts rising upward, taking the course through spinal cord. This happens due to stablisation of the 'Prana'.

कलाद्वयलयेनापि शक्तिसञ्चलनेन च[3]।
क्षणादुत्पद्यते तस्य मनसः कम्पनं सकृत् ॥५८॥

दो घटी अर्थात् ४८ मिनट पर्यन्त परतत्त्व में मन का लय होने की स्थिति आ जाने पर और कुण्डलिनी शक्ति के संचलन अर्थात् जागृत होकर ऊपर उठने की स्थिति आने पर क्षण मात्र में ही योगी के मन में कम्पन उत्पन्न हो जाता है।

58. When the mind remains absorbed in paratattva for two Ghatis (40 minutes), the Kundalini is awakened and takes upward movement, there arise vibrations in the yogi's mind in no time.

---

१. घटिकैकलयेनापि सुषुम्नामार्गवाहिनी क.

२. जाग्रती क. ख.

३. संचालनेन वा घ. शक्तेः संचालनेन च.। ख.

चतुःकलालयेनापि निद्राभावो निवर्त्तते ।
हृदि स्फुलिङ्गवद् योगी तेजोबिन्दून् प्रपश्यति ॥५६॥

चार घटी अर्थात् एक घन्टे छत्तीस मिनट तक योगी का मन जव परतत्त्व में लीन रहने लगता है, तव योगी को निद्रा की आवश्यकता या उसकी अनुभूति नहीं होती, और वह अपने हृदय में चिन्गारी के आकार के तेज विन्दुओं का साक्षात्कार करता है।

59. When the mind of the yogi remains absorbed in paratattva for four Ghatis(one hour and thirty six minutes) he neither experiences sleep, nor he requires it, he sees fast illumined points like sparklings.

दिनपादलयेनापि स्वल्पाहारो भवेन्नरः[१]।
स्वल्पमूत्रपुरीषश्च[२] लघुता स्निग्धता तनोः[३] ॥६०॥

उपर्युक्त काल से दूना आठ घड़ी, जिसे दिन का चतुर्थांश भी कहते हैं, पर्यन्त परतत्त्व में मन की स्थिरता प्राप्त हो जाने पर योगी का आहार अत्यन्त अल्प हो जाता है, उसको मल और मूत्र भी बहुत कम होता है, और उसके शरीर में हलकापन और स्निग्धता आ जाती है, अर्थात् शरीर का भारीपन और रुक्षता नष्ट हो जाती है।

60. When the mind of the yogi remains absorbed in paratattva for eight Ghatis (one fourth of a day), his diet becomes very little the urination and excretion are very much reduced, his body becomes very light, silky and shining.

वासरार्ध लयेनापि स्वात्मज्योतिः प्रकाशते।
सूर्यगोभिरिवादीप्तो[४] योगी विश्वं प्रकाशते ॥६१॥

आधे दिन तक मन के लय की स्थिति आ जाने पर योगी की स्वात्मज्योति प्रकाशित हो उठती है, फलतः वह सूर्य की किरणों के द्वारा दीप्त के समान सकल विश्व में प्रकाशित होता है।

61. When the mind of the yogi remains absorbed in the Paratattva for half a day, his 'Atma-Jyoti' (effulgence of the minerself) starts radiating with the result, the yogi shines like midday rays of the sun in the world.

---

१. यावत्तर्कमतीतं च ख., पावितर्क मतीतस्य ग., यावत्कर्ममतीतं च, घ.

२. आब्रह्म विश्वेश्वर त्वं च ख. ३. जायते क

४. सूर्योः गोभिरिवोद्दीप्तो क., स सुगोभिरिवोद्दीप्तो ख.

दिनमात्रलयेनापि स्वात्मतत्वं प्रकाशते ।
इन्द्रियज्ञानविस्तारो ब्रह्माण्डेऽप्यस्य वर्त्तते[१] ॥६२॥

जब योगी का चित्त दिन भर के लिए लय होने लगता है, तब उसके समक्ष आत्मतत्त्व प्रकाशित होता है। तथा समस्त ब्रह्माण्ड में इन्द्रियजन्य ज्ञान का विस्तार हो जाता है, अर्थात् वह अपनी इन्द्रियों के माध्यम से समस्त ब्रह्माण्ड में विद्यमान शब्द स्पर्श रूप रस और गन्धों के साक्षात्कार में समर्थ हो जाता है।

62. When the mind of the yogi remains absorbed in paratattva for the full day long, the Atma Tattva (the inner self his own soul) is manifested to him, his knowledge, acquirable by the sene cvers the entire universe (there remain nothing beyond his knowledge).

अहोरात्रलयेनापि योगी च स्वासने स्थितः[२] ।
चित्तवृत्तिनिरोधेन[३] गन्धं जानाति दूरतः ॥६३॥

अहोरात्र अर्थात् दिन और रात्रि के संयुक्त काल पर्यन्त यदि योगी का मन पर-तत्त्व में लीन रहने लगया है, तो चित्तवृत्तिनिरोध के फलस्वरूप वह दूरस्थ गन्ध का अर्थात् घ्राण इन्द्रिय के विषय का साक्षात्कार भी अपने आसन पर बैठे-बैठे ही कर लेता है।

64. When the yogi remains absorbed in paratrttva (state of laya) for one full day and night, with the restrain of chitta (mind-staff) gained by him, he can exp-rience any smell at a great distance while sitting on his Asana.

अहोरात्रद्वयेनापि लयेनानन्दमूर्च्छितः[४] ।
दूरादपि रसं वेत्ति योगी संकल्पवर्जितः ॥६४॥

योगी दो दिन रात्रि लय की स्थिति प्राप्त कर लेने पर, उसके अनन्तर में समस्त चेष्टाओं से रहित होने पर अत्यन्त दूर से ही बिना संकल्प अर्थात् इच्छा के ही रस अर्थात् जिह्वा के विषयों का साक्षात्कार करने लगता है।

64. When the yogi remains absorbed in paratattva for two days and nights. he can relish any taste with ut doing any thing and without even desiring, from a great distance.

---

१. व्यनुवर्तते। क.; व्यस्य जायते ख.

२. लयदानन्द मूर्च्छितः घ, ३. स्थितिवृत्ति निरोधेन ख.

४. लयानन्दसमूर्च्छितः ख., लयानन्देषु मूर्च्छितः ग:, लयनादेषु मूर्च्छितः घ.

अहोरात्रत्रयेणापि लयेनान्तस्थयोगिनः[1]।
दूराद् दर्शनविज्ञानं[2] स्वभावेनैव वर्त्तते ॥६५॥

जब योगी लगातार तीन दिन और रात्रि लय की स्थिति प्राप्त कर लेता है, अर्थात् अन्तर्लीन रहने लगता है, तब उसे अत्यन्त दूरस्थ रसनीय पदार्थ भी स्वाभाविक रूप से प्रत्यक्ष होने लगते हैं।

65. When the yogi remains absorbed in paratattva for three days and nights continuously, he can perceive things from great distance without any effort.

अहोरात्रचतुष्केन लयभावप्रभावतः।
स्पर्शं जानाति योगीन्द्रो दूरादेव न संशयः[3] ॥६६॥

चार अहोरात्र अर्थात् छियानवे घंटे (९६ घटे) निरन्तर लययोग का अभ्यास होने पर उसके प्रभाव से योगी कितनी भी दूरी से इच्छा मात्र द्वारा स्पर्श का और स्पर्श योग्य द्रव्य का ज्ञान प्राप्त कर लेता है। इसमें किंचिन्मात्र भी सन्देह नहीं है।

66. When the yogi remains absorbed in paratattva for four days and nights (96 hours) continuously, he can by his mere wish feel the touch of any object at any distance and recognise it without any doubt.

पञ्चरात्रलयेनापि तस्याप्युत्पद्यते ध्रुवम्।
दूरश्रवणविज्ञानम् मनस्याश्चर्यकारणम्[4] ॥६७॥

निरन्तर पांच रात्रि अर्थात् एक सौ वीस (१२०) घंटे लय की सिद्धि प्राप्त हो जाने पर योगी को निश्चय ही दूर से दूर उत्पन्न शब्द को सुनने की शक्ति प्राप्त हो जाती है, जो मानसिक कल्पना में भी आश्चर्यजनक है।

67. When the yogi achieves perfection in keeping himself absorbed in Paratattva for five days and nights continuously, he gains Powers to listen any sound created at any far off distance, though it appears very miraculous.

---

१. लयानन्दस्य योगिनः ख. २. दूरदर्शन विज्ञानं घ.
३. दूरादपि न संशयः घ. ४. मनसाश्चर्यकारणम् क.

एतत्पञ्चेन्द्रियज्ञानं[1] महत्स्वानुभवात्कम्[2]।
जानात्यनेन योगीन्द्रः सकलं बिम्बवर्त्तनम् ॥६८॥

पांच ज्ञानेन्द्रियों से उत्पन्न होने वाला यह पूर्वोक्त अनुभवात्मक ज्ञान, जो अत्यन्त महान् है, योगी को प्राप्त हो जाता हैं; इसके द्वारा योगी समस्त संसार चक्र (विश्व की समस्त गति को) जान लेता है।

68. The Powers of perceptions gained and the knowledge acquired by the . ve sense organs as de:cribed above, are great achievements a yogi gets and by this he cmes to know the entire cosmos and its working.

रात्रिषट्क लयेनापि[3] महाबुद्धिः प्ररोहति ।
तावत्कार्यमतीतं च[4] विश्वज्ञानं प्रकाशते । ६९॥

निरन्तर छः रात्रि पर्यन्त लय का अभ्यास हो जाने पर महती बुद्धि का स्फुरण हो जाता है, जिसके द्वारा उसे भूत और भविष्यत् कालीन समस्त विश्व विषयक ज्ञान स्वतः प्रकाशित हो जाता हैं।

69. On gaining perfection in keeping himself in the state of 'Laya' (absorption in Paratattva) for six days and nights continuously the yogi gains supernatural power of knowing the past and the future of every thing in this world.

सप्तरात्रलयेनापि परे लीनस्य योगिनः।
आब्रह्म विश्ववेत्तृत्वं[5] श्रुतिज्ञानं च वर्त्तते[6] ॥७०॥

योगी को सात रात्रि पर्यन्त निरन्तर लय की सिद्धि मिल जाने पर वेदों का समस्त ज्ञान, विश्व के समस्त पदार्थों का ज्ञान और ब्रह्म का भी ज्ञान अर्थात् ब्रह्मपर्यन्त विश्व के समस्त पदार्थों का ज्ञान उसे प्राप्त हो जाता हैं।

70. When the yogi is able to stablise himself in state of 'laya' for seven days (including nights) continuously, he gains the entire knowledge of all the vedas, all the matter and material of the universe and the Brahma (Supreme Being).

---

१. एकत्वं चेन्द्रियज्ञानम् क., एवं पञ्चेन्द्रियज्ञानम् ख.
२. महत्तत्त्वस्य कारणम् ख.
३. षड्रात्रविलयेनापि ग
४. यावत्तर्कमतीतं च ख., यावितर्कमतीतास्य ग., यावत्कर्ममतीतं च घ.
५. आब्रह्म विश्वेश्वरत्वं च ख.
६. जायते क

अष्टरात्रलयेनापि भवेद्योगी निरामयः।
क्षुत्पिपासादिभावैश्च सहजस्थो न पीड्यते[1] ॥७१॥

आठ रात्रि पर्यन्त निरन्तर लय का अभ्यास होने से योगी समस्त क्लेशों से छूट जाता है। उस समय वह भूख प्यास आदि सामान्यतः अनिवार्य कष्टों से भी सहज भाव से पीड़ित नहीं होता ॥

71. When the yogi becomes perfect in remaining absorbed in Paratattva for eight days and nights continuously, he becomes free from all the miseries. He does not suffer from any pain wich ordinarily arise on account of not fulfllling the essentialities of the life like thirst and hunger etc.

नवरात्रलयेनापि निर्भेदात्स्वात्मवर्त्तिनः[2]।
वाचां सिद्धिः[3] भवेत्तस्य शापानुग्रहकारिणी ॥७२॥

निरन्तर नव रात्रि पर्यन्त लय का अभ्यास हो जाने पर आत्मा में विद्यमान अविद्या आदि संस्कारों की ग्रन्थियां खुल जाती हैं और योगी को वाणी की सिद्धि मिल जाती है अर्थात् उसके मुख से निकले वचन पूर्ण होने लगते हैं, फलतः योगी शाप और वरदान देने में समर्थ हो जाता है।

72. When the yogi remains absorbed in Paratattva for nine days and nights continuously the knots of the past impressions like ignorance etc. in the self are opened and the yogi gains complete mastery of speech which means that whatever he says and does take place (the power of granting boons and curse).

दशरात्रलयेनापि सिद्धो योगीश्वरस्ततः[4]।
सुगुप्तानि च कार्याणि[5] स विचित्राणि[6] पश्यति ॥७३॥

निरन्तर दस रात्रि पर्यन्त लय का अभ्यास हो जाने पर योगी सिद्ध हो जाता है, फलतः वह अत्यन्त गुप्त विचित्र कार्यों को भी सहजभाव से देखता है।

73. When the yogi is fully able to keep himself in the state of 'laya'

---

१. सहजैरपि न पीड्यते ख.

२. निर्वेदस्यात्मवर्त्मिनः क., निर्भेदः स्वात्मवर्जितः ग.

३. वाचः सिद्धिः क. वाचा सिद्धि ख, ४. योगीन्द्रः स्वात्मनि स्थितः क.

५. यानि कानि च गुप्तानि क., यानि कानि सुगुप्तानि ख., यावत्क्रमगतं तस्मात् च.

६. महाचित्राणि कं.

for ten days and nights continuoulsly, he becomes able to know and see, very easily, any secret and the strange things being done.

ततश्चैकादशाहेन लयस्थस्य जयोदयात्[१]।
मनसा सह तस्यापि[३] गन्तुमिच्छति[४] विग्रहः ॥७४॥

इसके अनन्तर जब योगी को ग्यारह दिनों तक निरन्तर लय की सिद्धि मिल जाती है, तब उस योगी का शरीर भी मन के साथ इच्छानुसार गति करने में समर्थ हो जाता है।

74. Thereafter when the yogi remains in state of 'Laya' (absorbed in paratattva) for elevan days and nights continuously, his body can also travel with his mind as per his wishes.

द्वादशाहलयेनापि भूचरत्वं[५] हि सिध्यति।
निमेषार्धप्रमाणेन[६] पर्यटत्येव भूतले[७] ॥७५॥

बारह दिनों तक निरन्तर लय की सिद्धि हो जाने पर योगी को भूचर सिद्धि मिल जाती है, जिसके मिल जाने पर वह आधे निशेष में ही समस्त भूतल में पर्यटन कर लेता है।

75. When the yogi is successful in keeping himself in state of laya for twelve days (including nights) he gains 'Bhoochar Siddhi' (supernatural power of astral travel) and in no time he can reach any where in this earch.

ततस्त्रयोदशाहेन लयेनापि महाद्भुतम्[८]।
योगीन्द्रः खेचरीं सिद्धिं लभते चिन्तनादपि[९] ॥७६॥

---

१. तथा घ., तस्य ख.
२. जवोदयात् ग.
३. सहितस्यापि क.,
४. गन्तुमर्हति इति युज्येत
५. भूतितत्त्वं हि ख. ग
६. निमिषार्धप्रमाणेन घ.
७. भूतलम् ख
८. महाद्भुतम् ख. घ., महदद्भुतम् ग.
९. चेतनादपि ख.

इसी प्रकार तेरह दिनों तक निरन्तर लय का अभ्यास हो जाने पर योगी अत्यन्त अद्भुत खेचरी सिद्धि* अर्थात् आकाश गमन की सिद्धि चिन्तनमात्र से प्राप्त कर लेता है।

76. When the yogi remains absorved in Paratattva for thirteen days continuously he gaims a very strange super natural power known as 'Khechari siddhi' ('khe' means in sky and 'char' means to move—the power to move in the sky)

चतुर्दश दिनान्तं च[1] लयस्थो यदि तिष्ठति ।
अणिमाख्यास्य सिद्धिः[2] स्यादणुत्वं प्राप्यते यथा ॥७७॥

यदि योगी चौदह दिन तक लय की स्थिति में रहता है, तो उसे अणिमा नामक सिद्धि मिल जाती है, जिससे वह इच्छानुसार अणुभाव को प्राप्त कर लेता है।

77. When the yogi remains in state of 'Laya' for fourteen days, he gains the 'Anima Siddhi' (the supernatural power to become infinitely small-a microcasm)

आत्मन्येवात्मना[3] लीनो योगी षोडशवासरान्[4] ।
लभते महिमासिद्धिं सुमहान् दृश्यते यथा[5] ॥७८॥

योगी जब सोलह दिनों तक आत्मा में आत्म को लीन कर लेता है, तो उसे महिमा सिद्धि प्राप्त हो जाती है, जिसके फल स्वरूप वह अत्यन्त महान् दिखाई पड़ता है।

78. When the yogi remains in state of 'Laya' (the self absorved in the self) for sixteen days, he gains the 'Mahima Siddhi' (the supernatural power to become vast-a macrocosm)

अष्टादशदिनानां च[6] लयस्थो यदि तिष्ठति ।
गरिमाख्या भवेत् सिद्धिः यथा[7] भूभारधृग्भवेत् ॥७६॥

---

* खेचरी शब्द योग शास्त्र में खेचरी मुद्रा का वाचक है जिसमें जिह्वा को पलटकर तालुमूल के छिद्र से ऊपर ले जाते हैं। किन्तु यहां पूर्वापर को देखकर खेचरी का अर्थ आकाशगमन प्रासङ्गिक प्रतीत होता है, अतः वही अर्थ स्वीकृत हुआ है।

१. दिनान्तं तु क., दिनानां च ख.

२. अणिमाख्या च सिद्धिः क., अणिमाद्याष्ट सिद्धिः ख.

३. आत्मनैवात्मना ग. ४. षोडशवासरात् ख., षोडशवासरम् ग.

५. महारूपस्य धृग्यथा क., स महारूपधृग्यथा ख.

६. दिनान्तं तु क., दिनानां च ख., ७. गरिमाख्यां लभते सिद्धिं यथा ख.

योगी यदि अठारह दिन तक लय में स्थिर रहता है, तो उसे गरिमा नामक सिद्धि प्राप्तहो जाती है, जिसके फलस्वरूप वह समस्त भूमण्डल का भार वहन करने में समर्थ हो जाता है।

79. When the yogi remains stablised in the state of 'Laya' for eighteen days, he gains the 'Garima Siddhi (the supernatural power to become very heavy-like a mountain)

अभिन्नात्मलयेनापि[1] यस्य विंशति वासरम्[2] ।
लघिमाख्या भवेत् सिद्धिः यथा[3]णुत्वस्य भाग्भवेत्[4] ॥८०॥

जिस योगी के वीस-वीस दिन आत्म में लीन रहकर वीतते हैं, उसे लघिमा सिद्धि प्राप्त हो जाती है, जिससे वह इच्छानुसार अणु के समान अत्यन्त अल्प भार वाला हो जाता हैं।

80. When the yogi is able to pass his twenty days in state of 'Laya' continuously, he gaims the 'Laghima Siddhi' (the supernatural power to become weightless, so that he can levitate in space.)

द्वाविंशति दिनान्येव[5] स्वात्मलक्ष्ये लयं गतः[6] ।
प्राप्ता सिद्धिः भवेत्तस्य प्रापयेद्धि[7] जगत् स्थितिम् ॥८१॥

इसी प्रकार बाइस दिनों तक निरन्तर आत्मरूप लक्ष्य में लीन रहने वाला योगी प्राप्ति नामक सिद्धि को प्राप्त कर लेता है, इस सिद्धि के द्वारा वह जगत् को भी स्थिरता प्रदान कर सकता है।

81. When the yogi remains in state of 'Laya' for twenty two days the 'Prapti siddhi' (the supernatural power to obtain any thing in the world)—he can even stablise the world.

परे लयं गतो योगी चतुर्विंशतिवासरान् ।
तस्य प्राकाम्य सिद्धि स्याद् ईप्सितं लभते यथा[8] ॥८२॥

परतत्त्व में चौवीस दिनों तक लीन रहने वाले योगी को प्राकाम्य सिद्धि प्राप्त होती है, जिससे वह अभीष्ट की निर्वाध प्राप्ति कर लेता है।

82. When the yogi is able to remain 'absorved in Paratattva' (state of Laya) for twenty four days, he attains the 'Prakamya Siddhi' (the super natural power of irresistible will, fullfilling all desires).

---

१. अभिन्नार्थे लये वापि क. २. यश्च विंशतिवासरान् क., यं व विंशति वासरान् ख.
३. यथा ख. ४. भारधृक् क. ५. दिनानि स्यात् ग.
६. स्व लक्ष्ये विलयं गतः क., लयक्षे यो लयं गतः ख.
७. प्रापयेद्वा ग. ८. इच्छितं लभते ध्रुवम् क., वशित्वं लभते तथा ख.

यस्यैवास्तं गतं चित्तं षड् विंशतिदिनानि वै ।
लभते जगदीशित्वं[1] येन विश्वगुरुर्भवेत् ॥ ८३ ॥

जिस योगी का चित्त छब्बीस दिन तक लय को प्राप्त रहता है, वह ईशित्व सिद्धि पा जाता है, फलतः वह समस्त विश्व में गुरु अर्थात् मान्य हो जाता है।

83. The yogi, who successfully remains in state of 'Laya' for twenty six days continuously, gains the 'Ishittva siddhi' (the supernatural power of creation, rule over or destroy the things.) He gets recognition of being the universal Guru from the entire world.

अष्टाविंशत्यहर्यस्तु[2] लयस्तिष्ठेत् स्थिरासने[3] ।
वशित्वसिद्धिप्राप्तिः स्यादीप्सितं लभते यथा[4] ॥८४॥

जिस योगी का एक स्थिर आसन में अट्ठाइस दिन चित्त आत्मा में लीन रहता है, उसे वशित्व सिद्धि की प्राप्ति हो जाती है, जिससे उसे सभी अभीष्ट फलों की प्राप्ति हो जाती है।

84. The yogi whose chitta remains absorbed in Paratattva for twenty eight days, gains the 'Vashittva Siddhi' (the supernatural power to control all creatures and time.)

यातुमिच्छन्ति[5] ये केचित् परे ब्रह्मपदे लयम् ।
भवन्ति सिद्धयः सर्वाः तेषां[6] विध्वंसकारिकाः ॥८५॥

जो साधक परब्रह्म पद में लय प्राप्त करना चाहते हैं, उनके लिए सभी सिद्धियां विनाश का कारण बनती हैं।

85. The siddhis (supernatural powers) Prove to be ruinous for a sadhaka who wants to be fully merged in the 'Para-Brahma' (the supreme-Absolute Eternal).

मासमेकं लयो[7] यस्यं लग्नस्तिष्ठेदखण्डितः[8] ।
न जागर्ति स योगीन्द्रो यावन्मोक्षं न गच्छति[9] ॥८६॥

---

१. जगतीशित्वम् क., जगदीशत्वम् ख. २. अष्टाशित्यहान्यस्य क.
३. स्थिरात्गनः क., लयस्थस्य स्थिरासने ख.
४. यथा वै वशयेज्जगत् क., वश्यकृज्जगत् ख.
५. गन्तुं क. ६. तेषा सर्वाः क. ७. लये ख.
८. तिष्ठत्यखण्डितः क. लयस्तिष्ठेदखण्डितः ख.
९. न विन्दति क.

जो योगी निरन्तर एक मास लय भाव में स्थिर रह लेता है, वह योगीराज तब तक लय अवस्था में रह लेता है, जब तक मोक्ष नहीं प्राप्त कर लेता ॥

86. A yogi, who is able to remain in the state of 'Laya' for one month, becomes a 'yogi-Raja (a king among the yogis) and can' stay in that state till he gains Moksha (salvation).

नवमासलयेनापि पृथिवीतत्त्वं च सिध्यति[1] ।
पृथ्वीतत्त्वे च[2] संसिद्धे योगीन्द्रो वज्रसन्निभः ॥८७॥

योगी जब नौ महीनों तक लय स्थिति में रहने लगता है, तब उसे पृथिवीतत्त्व की सिद्धि हो जाती है ; तथा पृथिवीतत्त्व के सिद्ध हो जाने पर योगी वज्र के समान दृढ हो जाता है।

87. A yogi, who can stay in the 'Laya' for nine months gains mastery over 'Prithvi Tattva' (The element of earth) and becomes an admaintine.

सार्धसंवत्सरेणापि लयस्थस्यैव[3] योगिनः ।
तोयतत्त्वस्य सिद्धिःस्यात्तोयतत्त्वमयो हि सः[4] ॥८८॥

डेढ़ वर्ष पर्यन्त योगी को लय का अभ्यास होने पर उसे जल तत्त्व की सिद्धि प्राप्त हो जाती है, उस स्थिति में वह जलतत्त्व के सदृश ही हो जाता है।

88. A yogi remaining in the state of Laya for a year and half, gains mastery over the 'Jala Tattva' (the element of water) and becomes like that.

संवत्सरत्रयेणापि लयस्थस्यैव[5] योगिनः ।
तेजस्तत्त्वस्य सिद्धिः स्यात्तेजस्तत्त्वमयो हि सः[6] ॥८९॥

निरन्तर तीन वर्षों तक योगी के लय-अवस्था में रहने पर उसे अग्नितत्त्व की सिद्धि मिल जाती है, उस स्थिति में वह अग्नितत्त्व के समान ही तेजोमय हो जाता है।

89. A yogi who can remain in state of 'Laya' for three years continuously gains mastely our the Agni Tavtta (element of fire) and becomes radiant and effulgent like fire.

---

१. स विन्दति क., सः गच्छति ख. २. पृथ्वीतत्त्वेति ख.
३. लयस्थस्यापि क ४. भवेत् क. ५. लयस्थस्यापि क.
६. भवेत् क.

षड्भिः संवत्सरैः पूर्णैर[1]खण्डं यो लये स्थितः[2]।
वायुतत्त्वस्य सिद्धिः स्याद् वायुतत्त्वमयो हि सः[3] ॥६०॥

निरन्तर छः वर्षों तक अखण्ड लय में जो योगी स्थिर रहता है, उसे वायुतत्त्व की सिद्धि हो जाती है; फलतः वह वायुतत्त्वमय ही हो जाता है।

90. A yogi, remaining in the state of Laya for six years continuously gains mastery our the Vayu Tattva. (the element of air) and becomes pervaded in it.

तथा द्वादशभिर्वर्षैर्लयस्थस्य निरन्तरम्।
व्योमतत्त्वस्य सिद्धिःस्याद् व्योमतत्त्वमयो हि सः[4] ॥६१॥

इसी प्रकार बारह वर्षों तक निरन्तर लय अवस्था में रहने वाले योगी को आकाश तत्त्व की सिद्धि हो जाती है। उस स्थिति में वह आकाश तत्त्वमय हो जाता है।

91. In the same way when a yogi is able to stay in the state of Laya for twelve years continuously, be gains mastery over the 'Akasha Tattva (the elements of sky) and becomes pervaded in it.

चतुर्विंशतिभिर्वर्षैः लयस्थस्य निरन्तरम्।
शक्तितत्त्वस्य सिद्धिः स्याच्छक्तितत्त्वमयो हि सः[5] ॥६२॥
ब्रह्माण्डं सकलं[6] पश्येत्पाणिस्थमिव[7] मौक्तिकम्।
आत्मकायस्वरूपञ्च निर्धार्यार्थ[8] यथास्थितम्[9] ॥६३॥
कायस्थो दृश्यते लोके[10] तत्त्वचर्यां[11] समाचरन्[11]।
तत्त्वचर्यां करोत्येव शक्तितत्त्वक्षयाय च ॥६४॥

यदि योगी चौबीस वर्षों तक निरन्तर लय में स्थित रहता है, तो उसे शक्तित्त्व की सिद्धि हो जाती है, और वह शक्तितत्त्वमय हो जाता है। उस स्थिति में वह समस्त ब्रह्माण्ड को हाथ में स्थित मोती की भांति देखता है, अर्थात् सर्वज्ञ हो जाता है। और तव वह आत्म और शरीर के स्वरूप को इनकी वास्तविक शक्ति और इयत्ता को निर्धारित करके शरीर में रहते हुए भी तत्त्वचर्या में संलग्न दिखाई पड़ता है। तव भी वह तत्त्वचर्या करता ही है, जिससे उसमें शक्ति तत्त्व का निवास बना रहे।

92-94. If a yogi is able to stay in the state of 'Laya' for twentyfour

---

१. भूतैः क. ख. ग. २. एवमखण्डलयसंस्थितः क., अखण्डलयसंस्थिते ख.
३. भवेत् क.
४-५. भवेत् क. ६. ब्रह्माण्डान् सकलान् ख. ७. करस्थमिव क.
८८. निधायाथ ग. . यथेप्सितम् क.
१०. लोको ख. ११. तत्त्वचर्या समाचरेत् क., तत्त्वचर्या समाचरन् ख.

years continuously, he gains mastery over the 'shakti-Tattva" (the principle of power) and all the powers come under his control and command. In that state he can see the entire universe like pearls kept in the palm which means he becomes knower of all—an omniscient. He determines the real form, powers and limitations of the body, mind and soul. Even on remaining in the body he commands his masterly over all the elements and the entire principle of power.

इत्येवं क्रमवृद्धेन लयाभ्यासेन योगिनः ।
भुञ्जते परमानन्दं भुशुण्ड्यादिमहात्मवत् ॥९५॥
ब्रह्मा[1]विष्णुमहेशानां प्रलये चापि[2] योगिनाम्[3] ।
नास्ति पातो लयस्थानां महातत्त्वे विवर्त्तिनाम् ॥९६॥

इति अमनस्के कल्पखण्डे राजयोगोनाम प्रथमोऽध्यायः[4] ॥

इस प्रकार योगी के लय का अभ्यास क्रमशः बढ़ने पर वह योगी भुशुण्डी आदि महात्माओं के समान परम आनन्द का भोग करता है। इस प्रकार लय अवस्था में पहुंच कर महातत्त्व में विहरण करने वाले योगी का उस स्थिति में भी विनाश नहीं होता जब ब्रह्मा और विष्णु और महेश का भी प्रलय हो जाता है। तात्पर्य यह है कि इस अवस्था को प्राप्त होकर योगी नित्य परमानन्द में निवास करता है।

95-96. Thus with successive advancement of the duration of state of 'Laya' (absorption in Paratattva) the yogi reaches the stage of enjoying the supreme bliss as attained by the great perfect yogis in the past like Mahatma Bhushundi etc. A yogi who rambles in the Mahatattva (the supreme Eternal), enjoys eternity (he is not subjected to births and deaths) and is not destroyed on the dissolution of the world—the Pralaya (the fall of the cosmic night) even when Brahma, Vishnu and Mahesh, the trinity of the Gods is also dissolved.

इति तारक योगापरनामकेऽमनस्कयोगशास्त्रे प्रथमाध्यायदीपिका ।

---

१. महा क. ख. ग.

२. प्रलयेष्वपि क. ३. योगिनः ग.

४. इति अमनस्कखण्डे ईश्वरपार्वतीसंवादे प्रथमोऽध्यायः क., इति अमनस्के योग-शास्त्रे ईश्वरवामदेव संवादे प्रथमोऽध्यायः खः

अथ स्वयं बोधाख्यो नाम द्वितीयोध्यायः

वामदेव उवाच

भगवन् देव देवेश परमानन्द सुन्दर[२] ।
त्वत्प्रसादान्मया लब्धः पूर्वं योगः स विस्तरः[३] ॥१॥
अपरं किञ्चिदाख्याहि भवता यदुदीरितम्[४] ।

वामदेव बोले—हे देवों के भी देव, परम आनन्दस्वरूप, सुन्दर स्वरूप, भगवन्, आपकी कृपा से पहले मैंने विस्तार के साथ योग विषयक उपदेश प्राप्त किया है। आपने जो उपदेश दिया है, उसके ही सम्बन्ध में कुछ और विस्तार पूर्वक उपदेश कीजिए।

1. Vama Deva

Oh ! Lord of the Lords, embodiment of supreme bliss and beauty, with your grace I should hear your preachings in detail on the subject of yoga. Kindly explain in some more details about the same.

ईश्वर उवाच[५]

बहिर्मुद्रान्वितं पूर्वं बहिर्योगमनुत्तमम्[५] ॥२॥
अन्तर्मुद्राख्यमपरं तयोर्योगस्तदेव हि[६] ।
राजयोगः स कथितः स एवं मुनिपुङ्गवैः[७] ॥३॥

शिव बोले—यह योग दो प्रकार का है बाह्यमुद्राओं से युक्त उत्तम बहिर्योग और अन्तर्मुद्राओं से युक्त द्वितीय अन्तर्योग। मुनिजन उन दोनों के योग को राजयोग कहते हैं।

2,3 Ishwara

The Yoga is of two kinds. One is the external Yoga with its external postures and the other is internal yoga with its internal postures. The both of them combined are called Raja-Yoga.

---

१. पंक्तिरियं क. ख. पुस्तकयोर्नास्ति
२. सुन्दरम् क.
३. पंक्तिरियं क. ख. पुस्तकयोर्नास्ति
४. वाक्यमिदं ग. पुस्तके 'वहिर्मुद्रान्वितमि' त्यनन्तरं पठ्यते ।]
५. च उत्तमम् क. ग.
६. पंक्तिरियं ग. पुस्तके त्रुटिता
७. मुनिपुङ्गवं क.

राजत्वात्सर्वयोगानां राजयोग इति स्मृतः।
तस्मात्तमभ्यसेद्योगी स्वात्मतत्त्वविशुद्धये[१] ॥४॥

यह उपर्युक्त योगद्वय की समष्टि क्योंकि सभी योग प्रक्रियाओं में प्रशस्त है, अतः इसे राजयोग कहते हैं। योगी को चाहिए कि आत्मतत्त्व की शुद्धि के लिए अर्थात् उसके पूर्ण बोध के लिए इस योग का अभ्यास करें।

4 Since entity of the above two yogas is universal in all the yoga-activities, it is called Raja-yoga. A yogi should therefore practise this yoga for his purification and enlightenment.

राजन्तं[२] दीप्यमानं तं परमात्मानमव्ययम्[३]।
देहिनं[४] प्रापयेद्यस्तु राजयोगः स उच्यते ॥५॥
राजयोगस्य माहात्म्यं को वा जानाति तत्त्वः।

जो योग राजित होते हुए अर्थात् दीप्ति युक्त होते हुए अव्यय परमात्मा की प्राप्ति आत्मा को करा देता है, उसे राजयोग कहा जाता है। अथवा राजयोग की महत्त्व को पूर्ण रूप से कौन जान सकता है?

5. The yoga which illumines, enlightens and unites the Atman (individual self) with the Paramatman (universal self) is callen Raja-yoga. Who can know the real significance and importance of Raja-yoga completely ?

ज्ञानात्सिद्धिर्मुक्तिरिति[५] गुरोर्ज्ञानं च लभ्यते ॥६॥
अन्तर्योगं बहिर्योगं यो जानाति विशेषतः।
मया त्वयाप्यसौ वन्द्यः शेषैर्वन्द्यस्तु किं पुनः ॥७॥

यह सर्वस्वीकृत है कि ज्ञान से सिद्धियों की प्राप्ति होती है, और उसके बाद मुक्ति का लाभ होता है, तथा ज्ञान की प्राप्ति गुरु से होती है, विशेषतः उस गुरु से जो अन्तर्योग और बहिर्योग दोनों को जानता है। ऐसा गुरु मेरे अर्थात् ईश्वर-शिव और तुम्हारे (वामदेव) द्वारा भी वन्दनीय है, फिर शेष लोगों द्वारा वह वन्दनीय क्यों न होगा?

6.7 It is accepted by all that by knowledge are gained the 'siddhis' (perfections and super natural powers) and there after 'Mukti' (salvation) is acheived. The knowledge is gained from the Guru

---

१. पंक्तिरियं का ख. पुस्तकयोः न पठ्यते। २. राजानं क. ख.
३. परं ब्रह्मणम् क. ख. ४. देहिनः क. ख.
५. सिध्यति मुक्ति हि क. ख.

(Preceptor), particularly the Guru who possesses the knowledge of the external and internal yogas. Such a Guru is worthy to be revered by me (Shiva) and you (Vama Deva). Why should he then not be revered by others.

चित्तं बुद्धिरहंकारबीजं सोममयं मनः[1] ।
इन्द्रियाणि दशप्राणान् जुहोति ज्योतिमण्डले ॥८॥
तन्मूलादिन्दुपर्यन्तं[2] विभाति ज्योतिमण्डलम् ।
योगिभिः सततं ध्येयम् अणिमाद्यष्टसिद्धिदम् ॥९॥

चित्त बुद्धि अहंकार की वीज अस्मिता और सोमस्वरूप मन पांच ज्ञानेन्द्रियां और पांच कर्मेन्द्रियां इस प्रकार दसों इन्द्रियां तथा प्राण इन सव को ही वह गुरु ज्योति मंण्डल में हवन कर देता है अर्थात् ज्ञानरूप अग्नि से सभी को शुद्ध कर डालता है, फलतः ज्ञानाग्नि में हवन कर देता है अर्थात् मन पर्यन्त सर्वत्र ज्योतिर्मण्डल देदीप्यमान होता है। इसके द्वारा ही अणिमा आदि सिद्धियां प्राप्त होती है, अतएव योगी को इस ज्योतिर्मण्डल का निरन्तर ध्यान रखना चाहिए।

8.9 Such a Guru burns the chitta (mind-stuff) the intelect, the ego principle, the mind (representing moon) the five Karmendariyas (the sense organs of action) and the five Jnanendriyas (the sense organs of perception) by offering them in the flame of the aura of the internal light (of the spirit) or in other words it can be said that he purifies them in the fire of knowledge. Therefore by offering them in the fire of knowledge, they (chitta, inttelect, ego, all the ten organs of action and perception) are purified and illumined by the internal light and as such a yogi should always meditate on this internal light constantly.

वेदशास्त्रपुराणानि सामान्यगणिका इव ।
एकैव शाम्भवी मुद्रा गुप्ता कुलवधूरिव ॥१०॥

ज्ञान के साधन वेद शास्त्र और पुराण साभान्य गणिका के समान हैं अर्थात् इन की प्राप्ति तो सवको ही हो सकती है। किन्तु तत्त्वज्ञान के मुख्य हेतु भूत एक शाम्भवी मुद्रा ही है, जो कुल वधू के समान गुप्त है अर्थात् जिसे सव प्राप्त नहीं कर पाते।

10. The Vedas, Shastras and the Puranas which are considered to be the source of knowledge, are available to all like an ordinary

---

१. ऋत्विक्सोमश्च पंचमः क.ख.   २. तन्मूलान्नादि पर्यन्तम् क. ख.

prostitute, but the main source of internal knowledge, of the absolute, is the 'Shambhavi Mudra', which is not available to all, like an honourable lady of a respectable family.

अन्तर्लक्ष्यबहिर्दृष्टिर्निमेषोन्मेषवर्जिता ।
एषा हि शाम्भवी मुद्रा सर्वतन्त्रेषु गोपिता ॥११॥

निमेष और उन्मेष के विना दृष्टि तो वाहर रहे, किन्तु उसका लक्ष्य अन्दर रहे इसे शाम्भवी मुद्रा कहते हैं, सभी तन्त्रों अर्थात् साधना पद्धतियों में इसे गुप्त रखा गया है ।

प्रचलित योग परम्परा के अनुसार शाम्भवी मुद्रा के सात प्रकार होते है, (१) वहिर्लक्ष्य वहिर्दृष्टि, (२) अन्तर्लक्ष्य अन्तर्दृष्टि (३) वहिर्लक्ष्य अन्तर्दृष्टि (४) अन्तर्लक्ष्य वहिर्दृष्टि (५) वहिर्लक्ष्य प्रतिविम्बदृष्टि अर्थात् वहिर्लक्ष्य होने पर भी दृष्टि लक्ष्य पर न होकर लक्ष्य के प्रतिविम्व पर हो, (६) अन्तर्लक्ष्यप्रतिविम्वदृष्टि अर्थात् अन्तर्लक्ष्य होने पर भी दृष्टि लक्ष्य पर न होकर लक्ष्य के प्रविविम्व पर हो (७) लक्ष्यातीत लक्ष्य । प्रस्तुत पद्य में मध्यवर्ती अर्थात् चतुर्थ प्रकार का उल्लेख करके सम्पूर्ण शाम्भवी मुद्रा की ओर संकेत हुआ है ।

11. When the sight, though remaining outside without flickering (rising and falling) of the eye lids, gets fixed at the aim inside, it is known as 'Shambhavi Mudra'. All the Tantras, the traditions of Yoga Sadhana have kept it secret.

[According to Tradition, the Shambhavi Mudra is of Seven kinds. (1) Bahir lakshya-Bahirdrishti (external aim and external sight) (2) Antarlakshya-Antardrishti (internal aim and internal sight) (3) Bahirlakshya-Antardrishti (external aim and internal sight), (4) Antarlakshya Bahirdrishti (internal aim and external sight) (5) Bahirlakshya Pratibimbadrishti (external aim with sight fixed on the shadow of the aim and not the proper aim) (6) Antarlakshya Pratibimbadrishti (internal aim with sight fixed on the shadow of the aim and not the proper aim). (7) Lakshyatita Lakshya (The aim beyond the aim). In the above verse the 'Shambhavi Mudra' of the fourth type is mentioned].

---

१. अन्तलक्षबहिर्दृष्टिः क. ख.

आदिशक्तिरुमा चैषा मत्तो लब्धवती[1] पुरा ।
अधुना जन्मसंस्काराात्त्वमेको लब्धवानसि ॥१२॥

इस शाम्भवी मुद्रा का ज्ञान पहले आदि शक्ति उमा ने मुझ से प्राप्त किया था और अब अनेक जन्मों में की गई साधना के संस्कार के कारण तुमने मुझ से प्राप्त किया है ।

12. The knowledge of this 'Shambhavi Mudra' was first of all received by Uma, the shakti, from me and now by virtue of your sadhana of many previous birth, you have received it from me.

गुह्याद् गुह्यतरा विद्या न देया यस्य कस्यचित् ।
एतज्ज्ञानी[2] वसेद्यत्र स देशः पुण्यभाजनम् ॥१३॥
दर्शनादर्चनात्तस्य[3] द्विसप्तकुलसंयुताः[4] ।
जनाः मुक्तिपदं यान्ति किम्पुनस्तत्परायणाः ॥१४॥

यह विद्या (शाम्भवी मुद्रा का ज्ञान) समस्त गोपनीय पदार्थों से भी अधिक गोपनीय है। इसका उपदेश चाहे जिसको नहीं करना चाहिए। इस विद्या को जानने वाला जिस देश में निवास करता है, वह देश पुण्य देश है। ऐसे व्यक्ति के दर्शन से और उसकी पूजा करने से दोनों कुल अर्थात् माता और पिता दोनों के कुलों के सात पीढ़ियों के लोग मोक्ष को प्राप्त कर लेते हैं, फिर उनका क्या कहना जो इस मुद्रा के अभ्यास में निरन्तर संलग्न है।

13-14 This knowledge (of Shambhavi Mudra) is secret of all the secrets. This should not be taught to each and every one indiscriminately. Holy is that land where a yogi possessing knowledge of this Vidya resides. By mere seeing such a person and worshiping him, both the members of the seven generations of the families of the father and mother get salvation. Then what can be said about that individual who practises this Mudra constantly.

नोर्ध्वाधः[5] कुण्डली भेदःउन्मन्याश्चैव न क्रमः[6] ।
अनुसन्धानमात्रेण योगोऽयं सिद्धिदायकः ॥१५॥

---

१. जन्मवती क. ख., २. एतज्ज्ञानम् क. ख.
३. दर्शनात्स्पर्शनात्तस्य क. ख. ४. त्रिसप्तकुल संयुताः क. ख.
५. ऊर्ध्वाधः कुण्डली, भेदाद् ग. ६. तत्क्रमः ग.

इस मुद्रा के अभ्यास में न तो ऊर्ध्व या नीचे से कुण्डलिनी भेदन की प्रक्रिया की आवश्यकता है, और न उन्मनीभाव का क्रम अपेक्षित है। बल्कि इसमें शाम्भवी मुद्रा (अमनस्कता) के अनुसन्धान मात्र से इस योगसाधना मार्ग द्वारा सिद्धि मिल जाती है।

15. For thc practice of this Mudra there is neither the necessity of following the procedure of awakening Kundalini by upward or downward methods, nor the requirement of following Unmanibhava process. But Siddhi (perfection) can be achieved through the path of this yoga-sadhana by adopting and deeply penetrating in the 'Shambhavi Mudra'.

ऊर्ध्वं मुष्टिरधोदृष्टिर् ऊर्ध्वं वेधस्त्वधः शिरः[1]।
धारायन्त्रविधानेन[2] जीवन्मुक्तो भविष्यसि ॥१६॥

जीवन्मुक्ति प्राप्ति का उपाय है धारायन्त्र के सदृश साधना में प्रवृत्ति। धारायन्त्र अर्थात् फुहारा में निरन्तर प्रयत्न नीचे से ऊपर फेंकने का होता है और जो ऊपर पहुंचा हुआ है वह स्थिरता के लिए नीचे पहुंचकर स्थिरता प्राप्त करता है। इसी प्रकार साधक को चाहिए कि वह मुष्टि की भाँति दृढ़ता पूर्वक मूल बन्ध करे कि अपान और प्राण ऊर्ध्वगामी हो सकें किन्तु मन को और उसके साथ समस्त चेतना को मूलाधार चक्र में केन्द्रित करें (अधोदृष्टि) रहे। इस प्रकार प्राणों को सुषुम्ना द्वारा सहस्रार चक्र तक पहुंचाने के लिए सतत सावधान रहे। (ऊर्ध्व वेध) और इसके लिए अधःशिरा अर्थात् जालन्धर वन्ध करते हुए शिर को नीचे की ओर रखें। इस प्रकार धारायन्त्र (फुहारे) के सदृश स्वयं को वनाकर साधक जीवन्मुक्त हो जाता है।

16. The Jivana Mukti (freedom from the cycles of births and deaths) can be gained by engaging in sadhana like an instrument of a fountain. In a fountain there is constant endeavour to make the water flow upward with force and that which has reached up, comes down to gain stability. In the same way, a Sadhaka should practise Mulbandha like a firm first so that the Apana and Prana Vayu (the air in the rectum and the respiratory system representing the vital life force) are combined and makes an upward flow, however, the concentration remains at the Muladhara chakra

---

१. ऊर्ध्वभेदः क.　　　　२. राधायन्त्र विधानेन ग.

(Known Adho-drishti--downward sight). Thus the Prana are made to enter the Sushumna and reach the 'Sahasrara chakra' by constant practice and alertness, (known as Urdhvabhedo-upward piercing chakras) by performing jalandhara bandha keeping the head lowered. In this way one should become like a fountain and achieve jivanmukti.

कुलाचाररताः सन्ति गुरवो वहवो मुने ।
कुलाचारविहीनस्तु गुरुरेको हि दुर्ल्लभः ॥१७॥

हे मुनिवर वामदेव, कुल आगत आचार के पालन में लगे हुए अर्थात् सहज साधना के अभ्यास में कुशल गुरु तो वहुत होते हैं, किन्तु उसके विपरीत कुल-आगत आचार से रहित अर्थात् सहज से भिन्न साधना का जानकार एक गुरु का मिलना भी दुर्लभ है ।

17. O Muni Vama Deva, there are many Gurus who are experts in the yoga sadhanas which are going on traditionally, but it is difficult to find a Guru who is quite different from the traditional ones.

पुष्पात्प्रकाशते यद्वत् फलं पुष्पविनाशकम् ।
देहात्प्रकाशते तद्वत् तत्त्वं देहविनाशकम् ॥१८॥

जिस प्रकार फूल से ही प्रकट होने वाला फल फूल को नष्ट कर देता है, उसी प्रकार देह के द्वारा की गई साधना से प्रगट तत्त्वज्ञान देहबन्धन को समाप्त कर देता है ।

18. Just as a fruit destroys the flower from which it originates, the sadhana performed through the medium of the body, and the knowledge acquired threfrom, destroys the bindings caused by the body.

फलप्रकाशकं पुष्पं फलं पुष्पविनाशकम् ॥
तत्त्वप्रकाशको देहः तत्त्वं देहविनाशकम्[१] ॥१९॥

पुष्प भले ही फल को प्रकट करता है किन्तु फल पुष्प को नाश कर डालता है,

१. श्लोक मिदं ग० पुस्तके न पठ्यते ।

इसी प्रकार देह तत्त्व को प्रकाशित करता है, किन्तु तत्त्व प्रगट होते ही देह को नष्ट कर डालता है। अर्थात् तत्त्वज्ञान जन्ममरण के बन्धन को समाप्त कर देता है।

19. Though the flower makes the fruit emerge from it and appear, but the fruit destroys the flower, in the same way the body makes the knowledge emerge from it and manifest, but that knowlede destroys the body.

तत्त्वमात्मस्थमज्ञात्वा मूढः शास्त्रेषु मुह्यति ॥
गोपः कक्षावाते[1] छागे कूपे पश्यति दुर्मतिः ॥२०॥

मूर्ख व्यक्ति आत्मस्थ तत्त्व को न जान कर शास्त्रों में भटकता रहता है। जैसे बकरियां चरने वाला गड़रिया बकरी के बच्चे को बगल में दबाए हुए भी मूर्खता वश कुंए में झांकते हुए खोजता फिरता है।

20. An ignorant, not knowing the Atma-Tattva wanders in the scriptures to search in, though it is there with in his self, just as a foolish shephered searches for the lamb in a well though the the lamb is under his arm pit.

नमोऽस्तु गुरवे तुभ्यं सहजानन्दरूपिणे ॥
यस्य वाक्यामृतं[2] हन्ति संसारविषमोहनम्[3] ॥२१॥

हे सहज आनन्द स्वरूप गुरुवर ! आपको बारम्बार प्रणाम है। आपका वाणीरूप अमृत संसाररूपी विष से उत्पन्न मूर्च्छा को दूर कर देता है।

21. O ! embodiment of bliss my Guru, I offer my obeisance again and again. Your words and speeah, filled with nector, bring those to their conciousness who are being unconcious caused by the poison of worldly in fatuatione.

अमृतोद्दीपनी[4] विद्या निरपाया निरञ्जना।
अमनस्कैव सा कापि[5] जयत्यानन्ददायिनी ॥२२॥

आनन्द करने वाली एक अमनस्क विद्या ही ऐसी है, जो अमृत को उद्दीप्त करती

---

१. कक्षगते का० ख०
२. वाक्यामृतम् क०ग०
३. संसार मोहनागयम् क० ख०
४. अमृतोद्दीपिनी क० ख० ग०
५. अमनस्का कला कापि क० ख०

है, विघ्नों से रहित और निर्दोष होने से सर्वश्रेष्ठ है।

22. The bliss providing knowledge of Amanaska yoga only such that stimulates nectar and is considered to be best of all, being-faultless and free from obstacles.

प्रणष्णोच्छ्वास'निश्वास प्राध्वस्त'विषयग्रहः।
निष्चेष्टो निर्गतारम्भो ह्यानन्दयति तत्त्ववित्'॥२३॥

वह तत्त्ववेत्ता जिसने श्वास प्रश्वास की गति को निरुद्ध कर लिया है, विषयों के प्रति राग को नष्ट कर दिया है, जो निष्चेष्ट और क्रिया रहित हो गया है, वह पूर्ण आनन्द का अनुभव करता है।

23. Those knowers of the truth - the men of wisdom, who have acquired complete control on their respiration, destroyed the attachments with and allurements for the objects and passious, who have nothing to do, enjoy complete bliss.

उच्छिन्नसर्वसंकल्पो निश्शेषाशेषचेष्टितः।
स्वावगम्यो लयः कोऽपि जगतां वागगोचरः॥२४॥

लय (मन का लय) एक ऐसी उपलब्धि है, जिसको प्राप्त करते ही सभी संकल्प पूरी तरह नष्ट हो जाते हैं, सम्पूर्ण चेष्टाएं निश्शेष हो जाती है, उसके आनन्द का बोध स्वयं ही किया जा सकता है, विश्वभर की वाणी उसका वर्णन नहीं कर सकती।

24. The complete absorption of the mind (Laya) is such an achievment that when it is gained all the resolves are dissolved, there remains nothing to be done, the bliss enjoyed in that state is inexplicable in the language of the world.

वदन्त्येव परम्ब्रह्म बुद्धिमन्तो हि सूरयः।
स्वावबोध'कलालापकुशला भुवि दुर्लभाः॥२५॥

बुद्धि सम्पन्न विद्वान् लोग परब्रह्म का भी वर्णन करते हैं, किन्तु स्वात्मावबोध के एक अंश का भी वर्णन करने में समर्थ संसार में दुर्लभ हैं।

25. The intellectuals describe even the Brahman but it is difficult to find some one in this world. who may be capable to describe even the fraction of the self-realisation.

---

१. प्राणाष्टोच्छ्वास क० ख०
२. विध्वस्तं विषयग्रहः क० ख०
३. ह्यानन्द एव योगिना क० ख०
४. सर्वबोधकला० क० ख०

वदन्त्येवात्मनो भावं[1] वेदान्तोपनिषद्विदः।
रहस्यमुपदिश्यापि[2] स्वयं नानुभवन्ति ते ॥२६॥

वेदान्त और उपनिषद् के वेत्ता लोग आत्मभाव का भी वर्णन करते हैं, किन्तु वास्तविकता यह है कि वे रहस्य का उपदेश करते हुए भी रहस्य का अनुभव नहीं कर पाते।

26. Those who possess the knowledge of Vedas and Upaniashads describeabout Atman but in reality inspite of preaching about its secrets, they are not able to realise, experience those secrets themselves.

विज्ञाय[3] योगशास्त्राणि नानागुरुमतानि च।
निबद्धः स्वाववोधोऽयं स यः प्रत्ययकारकः ॥२७॥

विविध योगशास्त्रों को एवं अनेक गुरुओं के मतों को भली प्रकार समझकर स्वाववोध रूप इस अमनस्क योग का ग्रथन किया गया है, जो तत्काल तत्त्ववोध कराने में समर्थ है ॥

27. After thoroughly studying and understanding various Yoga. Shastras and the opinions, sects and traditions of many Gurus, this Amanaska Yoga, which provides self-realisation has been compiled.

सकलं समनस्कं च सायासं[4] च सदा त्यज।
निष्कलं[5] निर्मनस्कं च निरायासं सदा[6] भज ॥२८॥

समनस्क योग अर्थात् अमनस्क योग से भिन्न योग कलायुक्त अर्थात् अपूर्ण और कष्ट साध्य है, अतः उन सवको त्याग दो, जवकि अमनस्क योग पूर्ण है, अतः उसका सदा अभ्यास करना चाहिए।

28. The Samanaska Yogas, that is the yogas other than and different from the Amanaska Yoga, are full of skills and arts. difficult to be practised and are not complete and therefore should be aboundaned, on the other hand the Amanaska Yoga is without skills or arts; easy to be practised and complete with in itself and therefore should always be practised.

---

१. विनन्त्यनात्मनोऽभातं क० ख०
२. रहस्युपविशन्त्यन्ये ग०
३. विहाय
४. सापायम् क० ख०
५. निर्मलम् ग०
६. नित्यायम्' संभायित पाठ कं०

दुग्धाम्बुवत् सम्मिलितौ तु नित्यं[1] तुल्यक्रियौ मानसमारुतौ च।
यावन्मनस्तत्र मरुत्प्रवृत्तिः यावन्मरुच्चापि मनः प्रवृत्तिः ॥२९॥
तत्रैकनाशादपरस्य नाशः एकप्रवृत्तेरपरप्रवृत्तिः।
अभ्यस्तयोरिन्द्रियवर्गवृद्धि[2] विध्वस्तयोर्मोक्षपदस्य सिद्धिः ॥३०॥

मन और प्राण दूध जल के समान मिले हुए हैं, इनकी क्रियाएं भी साथ-साथ ही चलती हैं; अतः जब तक मन गतिमान् है, तब तक प्राण गतिशील है, और जब तक प्राण नियन्त्रित नहीं है, तब तक मन भी क्रियाओं में प्रवृत्त है। इस प्रकार इनमें से एक के नाश होने पर अन्य का भी नाश होता है; और एक के क्रियाशील रहने पर दूसरा क्रियाशील रहता है, इनके गतिमान् रहने पर इन्द्रिय वर्ग निरन्तर विषयों की ओर बढ़ता है और इनके नष्ट अर्थात् नियन्त्रित हो जाने पर मोक्षपद की सिद्धि हो जाती है।

29-30 The mind and Prana are mingled with each other as milk and water are mixed up, all their actions go together and therefore still the mind remains active the Prana remains active and similarly till Prana is not controlled, the mind too remains busy in its activities. Therefore, if any one of them is anmihilated (completely controlled) other is also destroyed (subdued), if one is active, the other too is active. When they are active the sense organs continue to run after the objects of their satisfaction and when they (mind and Prana) are completely controlled the supreme stage of Moksha (salvation) is achieved.

तत्राप्यसाध्यः पवनस्य नाशः षडंगयोगादिनिषेवणेन।
मनोविनाशस्तु गुरुप्रसादान्निमेषमात्रेण सुसाध्य एव[3] ॥३१॥

इनमें से षडङ्गयोग की साधना से भी वायु का नाश अर्थात् पूर्ण नियमन साध्य नहीं है, जबकि मनका विनाश अर्थात् अमनस्कयोग की सिद्धि गुरु की कृपा से निमेषमात्र में ही हो जाती है।

31 Even by the sadhana of Shadanga yoga, the Prana Vayu (respiration) is not completely controlled, where as by grace of Guru the annihilation of the mind viz. the siddhi (perfection of Amanaska yoga) is achieved in no time.

---

१. तु नित्यम् क० ख० ग० पुस्तकेषु नास्ति।
२. त्रिवर्गवृद्धिः इति क पुस्तके प्रस्तावितः पाठः
३. तु साध्य एव ग०

तस्मान्मनो नाशयतेऽमनस्काद्[1]
यन्नाशतो नश्यति वायुरग्रे ।
तस्मात् सुबुद्धीन्द्रियदेहनाशाद्
अद्वैतबुद्धिः सहजस्थितस्य ॥३२॥

अत एव अमनस्क योग के द्वारा मन का नाश (नियमन) किया जाता है, जिसके नाश (नियमन) से प्राण पहले ही नियमित हो जाते हैं। मन और प्राण के नियन्त्रित होने पर बुद्धि इन्द्रिय और देह का नाश होता हैं, अर्थात् साधक उन पर विजय प्राप्त कर लेता है। और उसके फल स्वरूप सहजभाव से स्थित योगी को अद्वैत बुद्धि अर्थात् अद्वैत भाव की प्राप्ति हो जाती है।

32. Therefore by Amanaska yoga, the mind is brought under full control, the Prana comes under control first of all and as a result of this the body, the sense organs and the intellect all are fully controlled (become defunct) all the dualities are destroyed and the state of Advaita (monism) is attained.

जित्वा वायुं विविधकरणैः क्लेशमूलैः कथञ्चित्
कृत्वा यत्नं निजतनुगताशेषनाडीप्रचारात्[2]।
अश्रद्धेयां परपुरगतिं[3] साधयित्वाऽपि नूनम्
विज्ञानैकव्यसनसुखिनो[4] नास्ति मोक्षस्य[5] सिद्धिः ॥३३॥

इस श्लोक में विविध साधना पद्धतियों की असमर्थता का विवरण किया गया है—'विविध कष्ट साध्य उपायों के द्वारा किसी प्रकार प्राणों पर विजय प्राप्त करके भी, अथवा प्रयत्न पूर्वक अपने शरीर की समस्त नाड़ियों में प्राणों का संचार करके भी, अथवा अत्यन्त अविश्वसनीय परकाया प्रवेश अर्थात् दूसरे के शरीर में अपनी आत्मा के प्रवेश की सिद्धि प्राप्त करके भी, अथवा विशिष्ट ज्ञान को व्यसन बना कर सुख का अनुभव करने से भी मोक्ष की सिद्धि नहीं हुआ करती।

33. The Maksha (salvation) cannot be achieved by controlling the Prana through various arduous methods or by transmitting the

---

१. नाशवतोऽमनस्कता क० ख०
२. प्रचारान् क० प्रवाहात् ग०
३. परमपुरगतिं ग०
४. विज्ञानेऽपि व्यसनसुखिनो क० ख०
५. तत्त्वस्य क० ख०

Prana in the entire nervous system or by gaining siddhi (perfection) of making one's Atma to enter into body of another person (Parakaya pravesha) or by acquiring special knowledge and experiencing joy there by.

केचिन्मूत्रं पिबन्ति स्वमलमथ तनो:[१] केचिदश्नन्ति[२] लालाम्,
केचित्काष्ठां प्रविष्टा युवतिभगगतं बिन्दुमूर्ध्वं नयन्ति
केचित्खादन्ति धातून् अखिलतनुशिरावायुसंचारदक्षाः
नैतेषां योगसिद्धि[३] विगतनिजमनो राजयोगाद् ऋते स्यात् ॥३४॥

योग साधना के नाम पर प्रचलित विधियों से साधना करने वालों में कुछ लोग शिवाम्बु कह कर आपने मूत्र का पान करते हैं, कुछ साधक (अघोर पन्थी) अपने मल को भी खाना साधना का अंग मानते हैं, कुच अपने शरीर पर भस्म आदि का लेपन करते हैं, कुछ लाला रस (लार) को पीने से मुक्ति मानते हैं। कुछ साधक तो हर प्रकार की मर्यादा को लांघ कर युवती स्त्री के साथ संभोग करके उसकी योनि में गिरे हुए वीर्य को वज्रोली क्रिया करके पुनः ऊपर खींचने को साधना मानते हैं। कुछ साधक धातुओं अर्थात् स्वर्ण पारद आदि का सेवन करके अमर होना चाहते हैं, तो कोई शरीर की सम्पूर्ण नस नाड़ियों में प्राण संचार में दक्षता प्राप्त करने को साधना मानते हैं; किन्तु इनमें से किसी प्रकार की साधना द्वारा तब तक सिद्धि नहीं हो पाती, जब तक राजयोग द्वारा मन का लय नहीं कर लिया जाए, अर्थात् अमनस्क योग साधना ही एक मात्र मोक्ष का मार्ग है।

34. For Deha siddhi (physical perfection of the body) many drink their own urine and eat their own excreta, phlegm and saliba. Many go to the extent of practising the sucking back through their urethra the semen falling in the vagina of young ladies (by vajroli kriya). Many want to become immortal by taking certain medicated preparations and many practise transmitting the Prana in veins, artiries and nerves. But none of them gets the 'Deha siddhi' except through the Raja yoga in form of Amanaska yoga which is the only method for obtaining the 'Dehasidhi'.

---

१. तनौ क० ख० २. उज्झन्ति क० ख०

३. युवतिभगपतद् ग०

केचितर्कवितर्ककर्कशधियोऽहंकारदर्पोद्धता:
केचिज्जातिगताभिमानभरिता ध्यानादिकर्माकुला:[1]।
प्राय: प्राणिगणा: विमूढसनसो नाना विकाराान्विता:
दृश्यन्ते नहि निर्विकारसहजानन्दैकभाजोभुवि ॥३५॥

कुछ विचारक ज्ञान मात्र से नि:श्रेयस् मानकर तर्क वितर्क करके अपनी बुद्धि को कर्कश बनाकर मोक्ष पाना चाहते हैं, समाज में कुछ लोग जातिगत अभिमान में मत्त हैं, और स्वयं को जन्म से ही ब्राह्मण अर्थात् ब्रह्मा के पुत्र और उससे अभिन्न मानते हैं, कोई लोग ध्यान साधना में लग कर विविध देवी-देवताओं के अथवा मूलाधार (आदि चक्रों के ध्यान में व्यस्त हैं, इस प्रकार प्राय: देखा जाता हैं कि प्राणिगर्ण (मनुष्य) अपने अज्ञान के कारण विविध विकारों से ग्रस्त हैं, दुर्भाग्य से निर्विकार सहज आनन्द के एक मात्र भोग (आस्वाद) करने वाले साधक संसार में बहुत कम हैं।

35. In this world we find that some ego-centric persons are indulging in arguements in loud tones exhibiting their intellcet, some people are puffed up in their pride of being high born, caste and creed, some are engaged in meditation find in this way we generally see that people are dull minded and suffer from many deformalities. People perfect in all respects without any deformelity and in ever joyous and pleasureful mood are rarely seen.

एकदण्डत्रिदण्डादि जटाभस्मादिकं तथा।
केचिल्लुंचननग्नत्वे[2] रक्तचीवरधारणम् ॥३६॥
उन्मत्तत्वमभोज्यान्नपानं पाखण्डवृत्तिता।
इत्यादिलिङ्गग्रहणं नानादर्शनदर्शनम् ॥३७॥

कुछ सम्प्रदायों में एक दण्ड धारण करना कुछ में तीन दण्ड धारण करना, किन्हीं में जटा भस्म आदि को धारण करना ही धर्म मान लिया गया है, और उसे ही परमपद की प्राप्ति समझते हैं, किन्हीं सम्प्रदायों में केशों का लुंचन धर्म माना गया है और किन्हीं में नग्न रहना धर्म बन गया है। इसी प्रकार उन्मत्त की भांति रहना अभोज्य अन्न पान आदि ग्रहण करना इत्यादि वस्तुत: धर्म नहीं है, बल्कि पाखण्ड है। इस प्रकार के तरह-तरह के पाखण्ड करने आ बाह्य चिह्नों को धारण करने की व्यवस्था विविध दर्शनों में (धार्मिक सम्प्रदायों में) वर्णित दिखाई पड़ती है।

36-37. Many religious sects and communities prescribe to adopt various outward symbols like drawing on forehead one or three

---

१. भोगाकुला: ख० २. नग्नत्वं क०

lines or a dot etc. with coloured pastes, to keep long hairs and apply ashes all over the body, or to remove all hairs by pricking them out, remaining naked or wrapping coloured rags, wandering like insanes, eating nonedables and doing many acts of hypocrisy.

उत्पन्न[1]स्वाववोधस्य ह्युदासीनस्य सर्वत:[2]।
सदाभ्यासरतस्यैतन्नैकत्वा[3]प्युपयुज्यते ॥३८॥

जिस साधक को स्वयं का वोध हो गया है, और सव ओर से उदासीन है, और निरन्तर अभ्यास में लगा हुआ है, उसके लिए इन सबमें एक भी नहीं जंचता ।

38. A sadhaka who has realised him self, has become enlightened who ramains constantly engaged in practising sadhana and has adopted attitude of unconcern, does not like outward symbolism.

तदा[4] दृष्टिविशेषाश्च विविधान्यासनानि च ।
अन्तः करणभावाश्च[5] योगिनो नोपयोगिनः ॥३९॥

स्वाववोध हो जाने के वाद विविध दृष्टि विशेष अर्थात् त्राटक और ध्यान आदि, विविध आसन तथा अन्तःकरण के विविध भावों (धारणाओं) का योगी के लिए कोई उपयोग नहीं रह जाता ।

39. After self realisation, the practice of Tratak (constant gazing at a particular object or point with open eyes without flickering of eye lids) Asanas (posture), concentration and meditation remain of no avail for a yogi.

अहंकारवृताः केचिज्ज्ञात्वा शास्त्रसमुच्चयम् ।
उपदेशं न जानन्ति ते[6] च ग्रन्थशतैरपि ॥४०॥

अनेक लोग विविध शास्त्रों का अध्ययन करके अहंकार से युक्त हो जाते हैं, वस्तुतः वे सैकड़ों ग्रन्थों को पढ़कर भी उनके उपदेश को नहीं जानते हैं ।

40. Many people study different scriptures and become very proud of their studies, but in reality they do not follow the teachings though they may read hundreds of such books.

---

१. नोत्पन्न० क० ख०
२. सर्वदा ग०
३. रतस्यैतेष्वेकतप्युप० क० ख०
४. सदा क० ख०
५. अन्तकरणभावश्च क० ख०
६. न च ग०

संकल्पमूलध्यानादि चिन्ताशतसमाकुला:[१] ।
क्लेशेनापि न विन्दन्ति प्राप्तव्यं स्थानमीप्सितम् ।।४१।।

संकल्प के मूल ध्यान आदि सैकड़ों चिन्ताओं से युक्त लोग कष्ट उठा कर भी प्राप्तव्य अभीष्ट पद को नहीं प्राप्त कर पाते ।

41. People engrossed in the hundreds of worries of the world with their attentions fixed on their aspirations and resolves, can not attain the really desirable stage supreme.

वेदान्ततर्कोक्तिभिरागमैश्च
नानाविधैः शास्त्रकदम्बकैश्च ।
ध्यानादिभिः सत्करणैरगम्यं[२]
चिन्तामणिं ह्येकगुरुं विहाय ।।४२।।

यह अभीष्ट मोक्षपद वेदान्तशास्त्र तर्कशास्त्र के वचनों द्वारा शैव वैष्णव या शाक्त आगामों के द्वारा अथवा विविध अन्य शास्त्रसमूह द्वारा अथवा ध्यान आदि उत्तम साधनों के द्वारा भी प्राप्त नहीं हो सकता, उसकी प्राप्ति केवल चिन्तामणि सदृश एक उत्तम गुरु के द्वारा ही हो सकती है ।

42. That desirable supreme stage of Moksha (salvation) can not be gained by the teachings of Vedant, Logic, Philosophy or by the Shaiva and Vaishnava Agamas (the theological treatises and practical manuals of divine worship which include Tantras. Mantras and Yantras), or other groups scriptures and literatures, or by better sadhana practices like meditation etc. That can only be possible with the help and grace of a most able Guru comparable with the most precious, pure and illuminating diamond known as Chintaamani.

तस्मान्नूनं सकलविषयान्[३] निष्कलाध्यात्मयोगाद्
वायोर्नाशस्तदनु मनसस्तद् विनाशाच्च मोक्षः ।
स्याच्चेदेवं[४] सहजममलं निष्कलं निर्विकारं[५]
प्राप्तुं[६] यत्नं कुरुत कुशलाः पूर्वमेवामनस्कम्[७] ।।४३।।

---

१. चिन्ताशास्त्रे समाकुलाः क० ख०, चिन्ताशत समाकुलम् ग०
२. न गम्यं क० ख०; जगम्यं ग०
३. संकल्पविषया ग०
४. सच्चिद्देवं ग०
५. निर्विकारं निरीहम् क० ख०
६. ज्ञात्वा क० ख०
७. अमनस्के क० ख०

अत एव समस्त विषयों का (उनके प्रति राग का) विनाश कला रहित अर्थात् पूर्ण आध्यात्म योग के द्वारा करें, इसके फलस्वरूप वायु का नाश अर्थात् प्राणों का नियमन होता है और उससे मन पर विजय प्राप्त होती है, जिससे मोक्ष की प्राप्ति होती है। यदि यह होना ही है, तो सहज निर्मल निष्कल (पूर्ण) निर्विकार अमनस्क योग को प्राप्त करने के लिए पहले ही प्रयत्न करो।

43. Therefore all the passions and desires should be destroyed by spiritual endeavours and yoga sadhana which enables control over Prana and victory over the mind leading to gain Moksha (liberation). And it being the easy, smooth, faultless, pure and complete Amanaska yoga should be practised from the very beginning.

अभ्यस्तैः किमुदीर्घकालममलै[1]र्व्याधिप्रदैः दुःखदैः[2]
प्राणायामशतैरनेककरणैः दुःखात्मकैः दुर्जयैः।
यस्मिन्नभ्युदिते विनश्यति बली वायुः स्वयं तत्क्षणात्
प्राप्तुं[3] तत्सहजस्वभावमनिशं सेवध्वमेकं गुरुम्॥४४॥

दीर्घ काल तक मलनिष्कासन करते हुए भी विविध रोग उत्पन्न करने वाले, अनेक उपायों से युक्त कष्ट साध्य दुर्जय प्राणायामों के करने का क्या लाभ? जबकि इस अमनस्क योग के उदय होते ही बलशाली वायु (प्राण) भी स्वतः वश में हो जाते हैं। अतः इस स्वभाव से प्राप्त होने वाले अमनस्क योग की प्राप्ति के लिए एक गुरु की सेवा करो।

44. What is the advantage of practising the difficult, pain bearing and most arduous Pranayama which, even after expulsing the impurities for a prolonged, period cause various diseases. Where as by practising this Amanaska yoga the powerful Prana automatically come under control. Therefore serve an able Guru for acquiring the Amanaska yoga, success in which is attainable in the most easy and natural way.

गुरुर्ब्रह्मा गुरु विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरोर्देवा[4]त्परं नास्ति तस्मात्तं पूजये[5]त्सदा॥४५॥

---

१. अनिलैः क०
२. दुष्करैः क० ख०,
३. प्राप्तयै क० ख०
४. गुरुदेवात् क० ख०
५. तस्मात्सम्पूजयेत् ग०

गुरु ही ब्रह्मा विष्णु और महेश स्वरूप है। गुरुदेव से उत्कृष्ट और कोई नहीं है, अतः उसकी सदा पूजा करनी चाहिए।

45. The Guru is embodiment of Brahma (the creater) Vishnu (the sustainer) and Mahesha one (the destroyer). There is no superior to Guru and therefore he should always be worshipped.

दृष्टिः स्थिरा यस्य विनैव दृश्यात्[1]
वायुः स्थिरो यस्य विना प्रयत्नात्[2]।
चित्तं स्थिरं यस्य विनाऽवलम्बात्
स एव योगी स गुरुः स सेव्यः ॥४६॥

जिसकी दृष्टि विना दृश्य के ही स्थिर हैं, जिसके प्राण विना प्रयत्न के स्थिर हैं, जिसका चित्त बिना अवलम्ब के स्थिर है। वही योगी है, वही गुरु होने योग्य है और वही सेवा योग्य है।

46. One whose sight, breath (prana) and mind remain fixed and stablished without the support of their objects, is really a yogi and he alone can be the preceptor (Guru) and is really worthy to be served.

अमनस्कं सुशिष्येषु संक्रास्येन्द्रियजं[3] सुखम्।
निवारयन्ते ते वन्द्या गुरवोऽन्ये प्रतारकाः ॥४७॥

जो प्रशस्त शिष्यों को इन्द्रियों से प्राप्त सुखों से हटाकर उनमें अमनस्क योग का अभ्यास प्रदान कर देते हैं, वे ही गुरु वन्दनीय है, अन्य सभी धूर्त्त धोखा देने वाले हैं।

47. The Guru makes his disciples capable to withdraw their senses from the persuit of the objects and passions and puts them on the path of practising the Amanaska yoga, is worthy of reverence and worship, the others are cheats.

गुरुणा दर्शिते तत्त्वे तत्क्षणा[4]त्तन्मयो भवेत्।
विमुक्तं मन्येतात्मानं[5] मुच्यते नात्र संशयः ॥४८॥

गुरु द्वारा तत्त्व का दर्शन कराने पर तत्क्षण उसमें ही तन्मय हो जाना चाहिए, और साधक स्वयं को मुक्त समझे, ऐसा करने से वह मुक्त हो जाता है, इसमें कोई सन्देह नहीं है।

---

१. विना निमेषात् क० ख०, २. निरोधात् क० ख०
३. संक्रम्येन्द्रियजं ग० ४. दर्शनात् ग०
५. विमुच्यात्मनात्मानम् ग०,

48. After getting the vision of the Absolute (Truth) with guidance (and grace) of the Guru, the sadhaka should remain fully engrossed in it from that very moment and feel that he is a liberated being. There is no doubt that by so thinking, feeling and practising, the Sadhaka is liberated.

यथा सिद्धरसस्पर्शा[१]त्ताम्रं भवति कांचनम् ।
गुरूपदेशश्रवणाच्छिष्यस्तत्त्वमयस्तथा[२] ॥४६॥

जिस प्रकार सिद्धरस (पारद) के स्पर्श मात्र से तांवा स्वर्ण वन जाता है, उसी प्रकार गुरु के उपदेश को सुनने मात्र से शिष्य तत्त्वमय अर्थात् परमात्मस्वरूप हो जाता है ।

49. Just as by alchemy, the copper becomes gold by simple touch of that chemical, in the same way the disciple becomes liberated by listening (and following) the preaching of the preceptor (Guru)·

तस्मादुपासना[३]त्सम्यक् सहजं प्राप्यते गुरोः ।
अनायासेन सततमात्माभ्यासरतो[४] भवेत् ॥५०॥

उस सिद्ध गुरु की उपासना से सहज अमनस्क योग की प्राप्ति भलीप्रकार अनायास हो जाती है। अतः गुरु उपदेश के अनुसार निरन्तर आत्माभ्यास में संलग्न रहना चाहिए ।

50. The Amanaska yoga is easily gained by Upasana (sitting with faith and reverence at the lotus feet of that perfect preceptor (Guru) and therefore a Sadhaka should continuously practise the spiritual sadhana as tought by the Guru.

विविक्ते विजने देशे पवित्रे सुमनोहरे[५] ।
समासने सुखासीनः पश्चात्किञ्चित्समाश्रयेत्[६] ॥५१॥

सुखस्थापितसर्वाङ्गः सुस्थिरात्मा सुनिश्चयः ।
बाहुदण्डप्रमाणेन कृतदृष्टिः[७] समभ्यसेत् ॥५२॥

---

१. रसस्य स्पर्शात् ग०
२. तत्त्वमयस्तथा क० ख०,
३. उपासितात् ग०
४. आत्माभ्यासे रतो ग०
५. अतिमनोहरे क० ख०,
६. समाश्रिते ग०,
७. तत्त्वदृष्टि ग०

पवित्र सुन्दर एकान्त निर्जन प्रदेश में समतल आसन पर सुख पूर्वक वैठकर पीछे से कुछ आश्रय (सहारा) लेकर सभी अंगों को सुख पूर्वक स्थिर करके सुस्थिर और निश्चल मन होकर एक वाहु प्रमाण दूरी पर अपनी दृष्टि को केन्द्रित करके अभ्यास करें।

51-55. The Sadhaka should practise this Sadhana in some pious atmosphere in some secluded place free from all disturbances by sitting firm in a comfortable posture, keeping some support on the back side and fixing his gaze at a distance of at an arms length in the front.

शिथिलीकृतसर्वाङ्गः आनखाग्र[1]शिखाग्रतः।
स बाह्याभ्यन्तरे सर्वचिन्ताचेष्टाविवर्जितः ॥५३॥
यदा भवेदुदासीनस्तदा तत्त्वं प्रकाशते।
स्वयं प्रकाशिते तत्त्वे स्वात्मानन्दः क्षणाद्[2] भवेत् ॥५४॥

वह साधक पादनख से शिखा पर्यन्त अपने सभी अंगों को शिथिल करके अन्दर वाहर समस्त चिन्ताओं से रहित होकर जब उदासीन भाव को प्राप्त हो जाता है, तब तत्त्व का प्रकाश होता है, तथा तत्त्व के स्वयं प्रकाशित हो जाने पर तत्क्षण स्वात्मानन्द का का अनुभव उसे होने लगता है।

53-54. When the Sadhaka releases all the tensions of the body from top to bottom-right from the head to foot, frees himself from all the external and internal worries, establishes himself in the state of full absorption and fusing (Laya) of the mind, the Tattva (the innerself, super conciousness) illumines and the Sadhaka gains the blissful experience of the self (Atmananda).

आनन्देन च सन्तुष्टः सदाभ्यासरतो भवेत्।
सदाभ्यासे स्थिरीभूते[3] न विधि नैव च क्रमः ॥५५॥

साधक को चाहिए कि उस स्वात्मानन्द से सन्तुष्ट रहता हुआ निरन्तर अभ्यास में संलग्न रहे। निरन्तर अभ्यास में स्थिर हो जाने पर उसके लिए न कोई विधि रह जाती है, और न कोई साधना का क्रम रहता है, अर्थात् वह अभ्यास में स्थिरता ही उसके लिए साधना होती है।

55. The yogi should continue his Sadhana practise even after this

१. स्वनखाग्र० ग०   २. स्वानन्दस्तत् क्षणात् क० ख०
३. सदाभ्यासस्थिरीभूते ग०

blissful-self experience. When the Sadhaka is established in the constant and continuous practice (keeping the mind fully absorbed and fused), there remains no need of any Sadhana or any system to be followed.

न किञ्चिच्चिन्तयेद् योगी सदा शून्यमना[1] भवेत्।
न किञ्चिच्चिन्तनादेव स्वयं तत्त्वं प्रकाशते ॥५६॥

योगी साधक को चाहिए कि वह सदा शून्य मन वाला अर्थात् भावतीत होवे और किसी प्रकार का चिन्तन न करें। किसी प्रकार के भाव के अभाव से ही, अर्थात् मन को सभी भावों से शून्य बनाने से उसमें तत्त्व का प्रकाश स्वयं ही हो जाता हैं।

56. The yogi should always remain in the transcendental state. By keeping the mind fully emptied of all thoughts and liberations in the fused condition of 'Shunya', the inner self (Atma-Tattva) illumines itself.

स्वयं प्रकाशिते तत्त्वे तत्क्षणात् तन्मयो भवेत्।
इदं तदिति तद् वक्तुं गुरुणापि न शक्यते ॥५७॥

तत्त्व का स्वतः प्रकाश होने पर योगी तत्क्षण उसमें तन्मय हो जाए। उस समय की जो अनुभूति होती है, वह 'इस प्रकार' की है कि इसका वर्णन गुरु(बृहस्पति)भी करने में असमर्थ होता है, अर्थात् उस समय के अनुभव का वर्णन संभव ही नहीं है।

57. When this innerself illumination flourishes, the yogi is engrossed and absorved in it at that very moment. The experience gained at that moment cannot exactly be described even by the Guru Brihaspati as it is not possible to do so.

वाङ्मनः कायसंक्षोभं प्रयत्नेन विवर्जयेत्।
दिशान्चान्तमिवात्मानं[2] सुस्थिरं धारयेत् सदा ॥५८॥

इस साधना के क्रम में योगी को चाहिए कि वह प्रयत्न पूर्वक वाणी मन और शरीर की चंचलता (अस्थिरता) का त्याग करें, तथा स्वयं को दिशाओं के अन्त की भांति (पाठ भेद के अनुसार शिलामय चित्र के समान) स्वयं को सदा स्थिर रखे।

58. For the practise of this Sadhana, the yogi should give up all the instabilities, waverings and wanderings of the body, tongue and mind and become firm and adamant like a statue on horizone.

---

१. औदासीन्यपरो क० ख०,   २. शिलाचित्रमिवात्मानं क० ख०

यावत्प्रयत्नलेशोऽस्ति यावत्संकल्पकल्पना ।
अहं त्वमिति सम्प्राप्ति[1]स्तावत्तत्त्वस्य का कथा ।।५६।।

जब तक साधक में साधना हेतु प्रयत्न रहता है, अथवा संकल्प विकल्प विद्यमान रहते है, तथा 'मैं' और 'तुम' की, मेरे और तेरे की भावना विद्यमान रहती है, तव तक तत्त्व बोध का कोई प्रश्न ही नहीं है ।

59. Till such time the Sadhaka has to make efforts for Sadhana or resolves, alterations and alternatives persist, the feelings of 'I' 'mine', 'you' and 'your' continue to arise, the chances of gaining experience of the self are very remote, rather remain impossible.

औदासीन्यामृतौघेन वर्धमानेन योगिनाम् ।
उन्मूलितमनोमूलो जगद्वृक्षः पतिष्यति ।।६०।।

औदासीन्यरूपी अमृत की वाढ के निरन्तर वढते रहने पर योगियों का मनरूपी मूल उखड़ जाता है, जिसके फल स्वरूप जगत्रूपी वृक्ष गिर जाता है, अर्थात् योगी को मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है ।

60. With the constant increase in the flow of nector of transcendentness assuming the form of a fllood, the mind, in the form of the roots of the tree of this world, is uprooted and the tree of Sansara (the world) falls down and the yogi attains Moksha (salvation)

सदा जाग्रदवस्थायां स्वप्नवद्योऽवतिष्ठति[2] ।।
श्वासोच्छवासविहीनस्तु[3] निश्चितं मुक्त एव सः ।।६१।।

जो योगी जाग्रत् अवस्था में भी स्वप्न अवस्था के समान अर्थात् समस्त भावों से रहित रहता है, तथा जिसके श्वास प्रश्वास स्थिर हो गये हैं, वह निश्चय ही मुक्त है ।

61. That yogi is certainly a liberated soul who even in the state of awakening is free from all thoughts and waverings of the mind (mind remaining fused) as in the state of dream.

---

१. श्रेयस्त्वं मनसा प्राप्तम् ग० २. अवतिष्ठते क० ख०

३. निश्वासोच्छ्वास हीनस्तु क० ख०

स्वप्नजागरणोपेता जन्तवो जगतीं[1] गताः ।
योगिनस्तत्त्वसम्पन्नाः न जाग्रति न शेरते ॥६२॥

संसार में विद्यमान सभी प्राणी स्वप्न और जाग्रत् अवस्थाओं से युक्त होते हैं किन्तु तत्त्व का बोध जिन्हें हो गया है वे, योगी न जागते हैं और न सोते हैं अर्थात् वे जाग्रत् और स्वप्न दोनों अवस्थाओं से परे रहते हैं ।

62. All the living beings in this world are subjected to remain in the states of awakening, dream and sleep, but the yogis who has attained Self Realization, (The Tattva Bodha), remains (in a unique and superstate) beyond the states of awakening and dream.

स्वप्ने चिदंशशून्यत्वं जागरे विषयग्रहः ।
स्वप्नजागरणातीतां गतास्तत्त्वं[2] विदुर्बुधाः ॥६३॥

स्वप्न अवस्था में चिद् अंश का अभाव रहता है, तथा जागरण अवस्था में विषयों का ग्रहण बना रहता है, जबकि तत्त्वबोध की अवस्था में ये दोनों स्थितियां नहीं होतीं, अतः विद्वान् योगी लोग तत्त्वबोध की अवस्था को स्वप्न और जागरण दोनों अवस्थाओं से भिन्न (पृथक्) स्वीकार करते हैं ।

63. In the dream state there is absence of the element of 'chit' (the direct knowledge) and in the awakening state there remain present activities of the senses for the objects, where as in the state of the 'Tattva-Bodha' (state of enlightment-self realization) there is neither presence or absence of the above two states. Thus the state of 'Tattva Bodha' is considered to be quite separate from the states of awakening, and dream.

भावाभावद्वयातीतं स्वप्नजागरणातिगम्[3] ।
मृत्युजीवननिर्मुक्तं तत्त्वं तत्त्वविदो विदुः ॥६४॥

तत्त्वज्ञानी लोगों के अनुसार तत्त्व-साक्षात्कार की अवस्था भाव और अभाव, स्वप्न और जागरण तथा मृत्यु और जीवन की स्थिति से सर्वथा पृथक् है ।

64. According to the Self-realized persons, the state of self realization is quite separate from the states of presencc and absence of thoughts, dream and awakening, life and death.

---

१. जागृतिं ग.   २. जागरणातातमस्तत्त्वम् ग.

३. जागरणान्तिगम् ग.

निद्रादौ जागरस्यान्ते यो भाव उपजायते[1]।
तं भावं भावयन्योगी[2] निश्चितं मुक्त एव सः[3] ।।६५।।

निद्रावस्था के प्रारम्भ में तथा जाग्रत् अवस्था के अन्त में जैसी मनः स्थिति (किसी भी भाव के प्रति असंसक्त स्थिति) रहा करती है, उस भाव की भावना करता हुआ योगी निश्चित ही मुक्त है।

65. The yogi, who remains absorbed in the mindless thoughtless state which one experiences in between the end of the awakening and begining of the sleep (in which there is no connection with any thought), is certainly a liberated one.

यथा सुप्तोस्थितः कश्चिद् विषयान्प्रतिपद्यते।
जाग्रत्येव तथा[4] योगी योगनिद्राक्षणे[5] तथा ।।६६।।

जिस प्रकार सोकर उठा हुआ कोई व्यक्ति विषयों के प्रति सर्वथा असम्पृक्त रह कर ही उनका साक्षात्कार करता है, योगी जाग्रत् अवस्था में योगनिद्रा का अनुभव करता हुआ उसी प्रकार विषयों के प्रति असम्पृक्त रहता हुआ जागता है।

66. Just as a man immediately after getting up from the sleep sees the objects remaining unconcerned with them, in the same way a yogi remains in state of Yoga-Nidra (sleep of a yogi) unconcerned with the objects. Through actually awakening.

सर्वतो वितता[6] दृष्टिः प्रत्यङ्नीता[7] शनैः शनैः।
परतत्त्वमनादर्शे[8] पश्यत्यात्मानमात्मनि[9] ।।६७।।

सब ओर फैली दृष्टि जब धीरे-धीरे विषयों से हटा ली जाती है, जिस स्थिति में सभी विषय दृष्टि से ओझल हो जाते हैं, उस स्थिति में योगी आत्मभूत परतत्त्व को स्वयं में ही देखता है।

67. When the sight, spreading out widely all round, withdraws slowly from objects and concentrates, the objects disappear (the mind cease], in that state the yogi experiences the Paratattva [supreme self] with his own self.

---

१. उपपद्यते क. ख.
२. भावयेत् योगी क. ख. भावयद् ग.
३. श्लोकमिदं श्लोकद्वयानन्तरं, 'सर्वतो वितता दृष्टिः' इत्याद्यनन्तरं पठ्यते ग. पुस्तके।
४. जागर्त्येव ततो क. ख.
५. योगनिद्रा क्षयो ग.
६. भविता क. ख.
७. प्रत्यग्भूता क. ख.
७. अनादर्शं क. ख.
६. आत्मना क. ख.

प्रथमं निःसृता दृष्टिः संलग्ना[1] यत्र कुत्रचित् ।
स्थिरी भूता च तत्रैव[2] विनश्यति शनैः शनैः ॥६८॥

साधना के क्रम में चक्षु गोलक से निकली हुई दृष्टि पहले किसी भी दृश्य पर लगती है, अर्थात् उसका साक्षात्कार करती है, फिर वह वहीं स्थिर हो जाती है, और धीरे-धीरे वह लुप्त होने लगती है, अर्थात् विषय से पराङ्मुख हो जाती है ।

68. In the process of Sadhana the sight comes out of the eyes and falls on some object and sees it and is fixsd on it, but slowly it vanishes from it [the object vanishes from the sight—though the sight and object remain physically there.

प्रसह्य संकल्पपरम्पराणामुच्छेदने सन्ततसावधाने[3] ।
आलम्वनाशाद[4]पचीयमाना शनैः शनैः शान्तिमुपैति दृष्टिः ॥६९॥

जब योगी संकल्प परम्पराओं के हठात् उच्छेदन के लिए निरन्तर सावधान रहता है, तब आलम्बन के नष्ट हो जाने के कारण दृष्टि धीरे-धीरे स्वयं शान्ति को प्राप्त कर लेती है ।

69. When the yogi constantly remains alert to root out all the resolves and desires, all the supports are destroyed, with the result the sight slowly calms down itself.

यथा यथा सदाभ्यासात् मनसः स्थिरता भवेत् ।
वायुवाक्कायदृष्टीनां स्थिरता च तथा तथा ॥७०॥

निरन्तर अभ्यास के फलस्वरूप जैसे-जैसे मन में स्थिरता आती है, वैसे ही वैसे प्राण वाणी शरीर और दृष्टि में भी स्थिरता आ जाती है ।

70. As the mind gains stabilisation progressivelly with the constant practice, the prana (respiration), speech, body and sight also gain stabilisation .

दृश्यं पश्यत एव सत्प्रियकर[5]ञ्चाघ्रेयमाजिघ्रतो[6]
भक्ष्यं भक्षयतः[7] श्रुतिप्रियकरं[8] श्रव्यं तथा शृण्वतः[9] ।
स्पृश्यं च स्पृशतो निरिन्धनशिखा प्रख्यं मनोऽत्र[10] क्रमात्
अद्वैताख्यपदस्य तत्त्वपदवीं प्राप्तस्य[11] सद्योगिनः ॥७१॥

---

१. संगता क. ख.
२. यत्रैव क. ख.
३. सावधानम् क. ख.
४. आलम्वभावाद् क. ख.
५. पश्यति यो न पश्यति जनैः ग. येन सत्प्रियकरम् क. ख.
६. श्राव्यं तथा शृण्वतः क. ख.
७. घ्रातव्यं परिजिघ्रतो क. ख.
८. ऽथवदतो क. ख.
९. ध्येयं सदा ध्यायतः क. ख.
१०. मनोज्ञम् ग.
११. पदवी प्राप्तस्य ग.

जो योगी अद्वैत पद नामक तत्त्व पदवी को प्राप्त कर चुके हैं, उन योगियों का मन प्रिय दृश्यों को देखते समय भी, अत्यन्त प्रिय गन्ध का घ्राण द्वारा आस्वादन करते रहने पर भी, स्वादिष्ट भक्ष्य पदार्थों को ग्रहण करते रहने पर भी, कानों से प्रिय शब्दों को सुनने पर भी, त्वचा द्वारा सुखद स्पर्श योग्य पदार्थों का स्पर्श करने पर भी इन्धन रहित दीपशिखा की भांति क्रमशः शान्त हो जाता है।

71. The mind of the yogis, who have attained the position of non-duality, slowly extinguishes like the flame of a lamp in which oiling is finished, and it remains calm even when the eyes enjoy the sight of beautiful scenes, nose smells pleasing dours, tongue relishes delicious] foods, the ears hear sweet melodies and the touches are silkly smooth and soothing]

यदा यत्र यथा यस्मात्[1] स्थिरं भवति मानसम्।
तदा तत्र तथा तस्माद् न तु चाल्यं कदाचन ।।७२।।

साधक का मन जब जहां जैसे और जिस माध्यम से भी स्थिर होता है, तब वहां उस प्रकार और उस माध्यम से स्थिर होने देना चाहिए उसे चलाना (हटाना) कभी नहीं चाहिए।

72. Whenever and wherever the mind of the Sadhak stablises, by whatever means it may be, the mind should be allowed to stablised and should not be disturbed.

यत्र यत्र मनो याति न निवार्यं ततस्ततः[2]।
अवारितं क्षयं याति वार्यमाणं[3] तु वर्द्धते[4] ।।७३।।

साधक को चाहिए कि उसका मन जहां-जहां जाता है वहां-वहा से उसे न हटाए, क्योंकि न हटाने पर वह वही लीन होकर क्षय को प्राप्त हो जाता है, और इसके हटाने से वढ़ता है।

73. The Sadhaka should not withdraw the mind forcibily from where it goes as the mind would be fused there only if not withdrawn, otherwise when it is forced to withdraw, it becomes hostile.

---

१. यत्र क. ख. २. मनस्तथा ग.

३. वार्यमाणो नु ग.

४. तुलनीय (क.) विषयवती वा प्रवृत्तिरुत्पन्ना मनसः स्थितिनिवन्धिनी। योगसूत्र
(ख) न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।
हविषः कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते ।। गीता

यथा निरङ्कुशो हस्ती कामान्प्राप्य निवर्त्तते ।
अवारितं मनस्तद्वत् स्वयमेव विलीयते ।।७४।।

जिस प्रकार निरंकुश हाथी कामनाओं को प्राप्त करके स्वतः लौट आता है, उसी प्रकार मन को भी यदि विषय से नहीं हटाया जाता, तो वह वहीं स्वयमेव विलीन हो जाता है ।

74. Just as an elephant returns back after passifiying its desires, even without any prooding, in the same way the mind, even without suppressing or forcefully withdrawing it, stops wandering and object pursuing, calms down and is absorbed (with in itself) if the process of practice is continued.

निर्वार्यमाणं यत्नेन धर्तुं यन्नैव[1] शक्यते ।
न तिष्ठति क्षणेनैव[1] मारुतस्य वशोदयात् ।।७५।।

प्राण का वशवर्त्ती होने के कारण मन यत्न पूर्वक विषयों से हटाने पर भी रोका नहीं जा सकता । वह क्षण भर भी स्थिर नहीं रहता ।

75. The mind is like air and does not stopp and stablise for a few seconds even its persuits of objects.

दुर्निवार्यं मनस्तावद् यावत्तत्त्वं न पश्यति[1] ।
विदिते तु परे तत्त्वे मनो नौस्तम्भकाकवत् ।।७६।।

मन का निग्रह करना तब तक दुष्कर है, जब तक परतत्त्व का साक्षात्कार नहीं होता । परतत्त्व साक्षात्कार हो जाने पर वही मन नौका के स्तम्भ पर बैठे कौवे के समान स्थिर हो जाता है ।

76. It is very difficult to fully restrain the mind till the inner self is not experienced. When there Tattva Darshana (self realization) the mind rest like a crow on the mast of a ship in mid sea.

यथा तुलां तुलाधारश्चंचलां कुरुते स्थिराम् ।
जाते[2] सौख्ये सदाभ्यासान्मनोवृत्तिस्तथात्मनि[3] ।।७७।।

जिस प्रकार तराजू से तौलने वाला चंचल तुला को स्थिर करता है, उसी प्रकार निरन्तर अभ्यास से आनन्द की प्राप्ति होने पर मन की वृत्ति भी आत्मा में स्थिर हो जाती है ।

---

१. विन्दति क. ख. २. याने सौख्ये क. ख.
३. तदात्मनि क. ख.

77. Just as a weigher keeps the balance in equilibrium to have correct weight, in the same way, by constant practice a yogi's mind-stuff ceases taking various forms on attaining state of blissfulness.

निष्पन्नाखिलभावशून्यनिभृतस्वान्तः[1] स्थितिस्तत्क्षणात्
निश्चेष्टश्लथपाणिपादकरणग्रामो विकारोऽज्झितः[2] ।
निर्मूलप्रविनष्टमारुततया निर्जीविकाष्ठोपमो[3]
निर्वातस्थितदीपवद्धिसहजा तस्याः स्थितिर्लक्ष्यते[4] ॥७८॥

जिस साधक का मन सम्पूर्ण रूप से भावशून्य हो गया है, उसकी स्थिति तत्काल स्वात्मनिष्ठ हो जाती है, उसकी हाथ पैर आदि सभी इन्द्रियां निर्विकार होकर निश्चेष्ट और शिथिल हो जाती हैं, उसकी प्राणों की गति भी नष्ट हो जाती है और उस समय वह मूल रहित निर्जीव काष्ठ के सदृश हो जाता है, उस समय उसकी स्थिति वैसी ही प्रतीत होती है, जैसे निर्वात प्रदेश में रखे हुए दीप की, अर्थात् वह पूर्णरूप से स्थिर और समाधियुक्त हो जाता है।

78. A Sadhaka, whose mind becomes absolutely devoid of all thoughts and feelings, immediately attains the state of self-absorption. All his sense organs of action and perception becomes totally inactive even the movement of respiration stops. In that state the position of the sadhaka can be compared with an unwavering stable flame of a lamp in windless condition, or in other words we can say that he attains samadhi.

निक्षिप्तं कनकं विहाय कलुषं यद्वद् भवेन्निर्मलम्[5] ।
निर्वातस्थितनिस्तरङ्गमुदकं स्वच्छस्वभावं यथा[5] ।
तद्वत्सर्वमिदं विहाय सकलं देदीप्यते निष्फलम्
तत्त्वं तत्सहजस्वभावममलं जातेऽमनस्के ध्रुवम् ॥७९॥

अग्नि में डाला हुआ सुवर्ण जिस प्रकार अपनी सम्पूर्ण कलुषता को छोड़कर निर्मल हो जाता है, जिस प्रकार वायु वेग न रहने पर स्वच्छ स्वभाव वाला जल तरङ्ग रहित और पूर्ण शान्त निर्मल रहता है, उसी प्रकार अमनस्क भाव प्राप्त होने पर आत्म तत्त्व भी समस्त विकारों को छोड़कर सहज रूप से निर्मल और निश्चल होकर देदीप्यमान होता है।

---

१. निभृतस्वात्मस्थितिः ग. निसृजः स्वान्तः स्थितिः क. ख.
२. विकारस्ततः ग.
३. निर्जीव काष्ठोपमो क. ख.
४. ग. पुस्तके पंक्तिरियं त्रुटिता
५. पंक्तिरियं ग. पुस्तके त्रुटिता
६. परम् क. ख.

79. Just as a piece of gold kept in fire becomes free from all impurities and starts shining (with its pure natural glow), just as the pure water becomes absolutely calm without any ripple when there is no wind, in the same way when the mind is fused, completely absorbed with in the self, the 'Atma-Tattva' illumines in its pure natural effulgence devoid of all the impurities.

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः ।
बन्धाय विषयासङ्गि[1] मुक्त्यै[2] निर्विषयं मनः ॥८०॥

सभी मनुष्यों के बन्धन और मोक्ष कारण मन ही है । विषयों में आसक्त मन बन्धन के लिए कारण बनता है, और विषयों की वासना से रहित मन मुक्ति का कारण होता है, अर्थात् मुक्ति प्रदान करता है ।

80. The mind is the cause of all the findings and bondages for a man. The mind engaged in pursuing objects to pacify senses, entangled in infatuations, becomes cause of bondages for a man, whose as a mind free from all the persuits of objects and attachments, makes a man attain complete liberation.

मनो दृश्यमिदं सर्वं यत्किंचित्सचराचरम् ।
मनसोप्युन्मनीभावेऽद्वैतभावं प्रचक्षते[3] ॥८१॥

यह जो कुछ चराचर जगत् है, उस सबका दर्शन मन के द्वारा ही होता है । मन में उन्मनीभाव आ जाने पर उस स्थिति को आत्मा का अद्वैत भाव कहा जाता है ।

81. This entire animate and inanimate world is visible by the mind only, as when the mind is in the fused state of transcendentness (Amanaska Bhava), there remains no duality and monistic state of Atman (the absolute self) is experienced (pervading every where).

जायमानामनस्कस्य ह्युदासीनस्य तिष्ठतः ।
मृदुत्वं च परत्वं च शरीरे तस्य[4] जायते ॥८२॥

जिसमें अमनस्क भाव उत्पन्न हो गया है और उसके फलस्वरूप जो पूर्ण उदासीन भाव से रह रहा है, उसके शरीर में मृदुता और परता अर्थात् अलौकिकता आ जाती है ।

82. One who has attained the fused state of the mind, becomes supernaturally sublime and tender physically.

---

१. विषयासक्तं ग.
२. मुक्तये क. ख.
३. प्रकल्पते क. ख.
४. शरीरस्याथ क. ख.

अमनस्के क्षणात्क्षीणं[1] कामक्रोधादिबन्धनम् ।
नष्टान्त:करणस्तम्भं देहगेहं श्लथं भवेत्[2] ।।८३।।

अमनस्क भाव के सिद्ध होने पर कुछ क्षणों में ही काम क्रोध आदि वन्धन नष्ट हो जाते हैं, एवं जिस प्रकार स्तम्भ के नष्ट हो जाने पर भवन गिर जाता है, उसी प्रकार अन्तकरण के नष्ट हो जाने पर शरीर भी शिथिल हो जाता है, अर्थात् शरीर का वन्धन छूट जाता है ।

83. When the state of transcendentness (Amanaska Bhava) is confirmed, the binding causes of passions, desires, anger etc. are destroyed; just as on falling down of the pillers, building collapses, in the same way when the mind is in mihllated, the bandages of the body are broken.

सहजेनामनस्केन मनः शल्ये वियोजिते[3] ।
आतपत्रमिव स्तम्भं शरीरं शिथिलायते ।।८४।।

सहज अमनस्क योग द्वारा मनरूप शल्य (हुक) निकाल देने पर छाते (छत्र) की भांति शरीररूप स्तम्भ भी शिथिल हो जाता है ।

84. By the natural Amanaska yoga, the hook of the mind is taken out and the body becomes inactive and falls like an umbrella.

अमनस्कखनित्रेण समूलोन्मूलने कृते ।[4]
अन्तकरणशल्ये तु सुखी संजायते[5] मुनिः ।।८५।।

अमनस्कयोगरूपी खनित्र (खन्ती) के द्वारा अन्तकरणरूपी कटीले वृक्ष का समूल उन्मूलन हो जाने पर अर्थात् उखाड़ दिये जाने पर साधक सुखी अर्थात् पूर्ण आनंद का अनुभव करने वाला हो जाता है ।

85. When the thorny bush of the mind is destroyed along with its roots with the help of digger and sickle of the Amanaska yoga,

---

१. क्षणं लोभ० ग.
२. नष्पतिस्करणस्तम्भम् ग.
३. नियोजिते क. ख.
४. समूलोन्मूलिनी कृते ग,
५. संजीवते ग.

the Sadhaka experiences bliss.

कदलीव महामाया समनस्के दिवच्छदा[1]।
अमनस्कफलं दत्त्वा[2] सर्वथैव[3] विनश्यति ॥८६॥

महामाया केले के पेड़ के समान समनस्क रहने पर ऊपर की ओर पत्ते फैलाए वढ़ती रहती है, किन्तु अमनस्करूपी फल निकल आने पर वह महामाया सर्वथा नष्ट हो जाती है।

86. The Mahamaya (the illussonary power) spreads upward like a plantain tree, when the mind is active (Samanaska), but when there is fruitation of the Amanaska, the Mahamaya is completely destroyed, there remains no illusionary world (the supreme truth remains).

इन्द्रियग्रामपदयो[4] निःश्वासोच्छ्वासपक्षयोः।
संछिन्नयोः[5] मनःपक्षी स्थिरः सन्ना[6]वसीदति ॥८७॥

इन्द्रिय समूह अर्थात् ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रियरूपी पैरों के तथा निःश्वास और उच्छ्वासरूपी पंखों के कट जाने पर अर्थात् इनके नियन्त्रित हो जाने पर मनरूपी पक्षी स्थिर होकर समाप्त हो जाता है।

87. Just as on breaking the legs and cutting the wings of a bird, it falls down and lies still, in the same way the mind falls down and stands still when the senses of action and perception are broken like the legs of the bird and the respiratins (inhalation and exhalation are cut (fully controlled) like the wings of the bird.

श्वाससूत्रशतोपेतम्[7] इन्द्रियालयसंकुलम्।
त्रोटयित्वा मनोजालं जायते मनीवत् सुखी ॥८८॥

श्वास रूपी सैकड़ों धागों वाले इन्द्रिय रूप घरों से युक्त, मनरूपी जाल को तोड़ कर साधक मछली की भांति सुखी हो जाता है।

---

१. समनस्केन्द्रिये सदा क. ख-

२. श्रुत्वा ग.

३. सर्वदैव क, ख.

४. इन्द्रियग्राहपदयोः क. ख.

५. संक्षीणयोः क. ख.

६. स्थिरसत्तो क. ख.

७. ०समोपेतम् ग.

88. After he has, like the fish, broken to net of mind, made of the thred of inhalation and exhalation of breaths and full of the propensition and desires of senses, The Sadhaka enjoys full freedom and bliss.

प्रशान्तेन्द्रियपादातो[१] बुद्धिशक्तिसमन्वितः ।
वायुनाशयुतं[२] जित्वा[३] मनः शत्रुं सुखी भवेत् ।।८६।।

जिसकी इन्द्रियरूपी पदाति सेना पूर्ण नियन्त्रित हैं, एवं जो बुद्धिरूपी शक्ति से युक्त है, ऐसा साधकरूपी राजा जिसका वायुरूपी सहायक नष्ट हो गया है, मनरूपी शत्रु को जीतकर सुखी होता है ।

89. The Sadhaka attains supreme bliss after equipping himself with the powers of his spiritual insight and Vanquishing his enemy. The mind consiquent upon the conquest of the breath and the stoppage of the movement of the infantry of sence organs.

गुणत्रयमयीं रज्जुं[४] सुदृढात्मनिबन्धनीम्[५] ।
अमनस्कक्षुरेणैव छित्वा मोक्षमवाप्नुयात् ।।९०।।

कुशल साधक को चाहिए कि सत्त्व रजस् एवं तमस् इन तीन गुणों वाली आत्मा को सुदृढ़ वन्धन में करने वाली रज्जु को अमनस्कयोगरूपी छुरे से काट कर मोक्ष को प्राप्त करे ।

90. A wise and skilful Sabhaka should cut away the binding ropes of the Sattva, Rajas and Tamas with the sharp edge of the sword of Amanaska yoga and gain Moksha (salvation).

यथा संह्रियते[६] सर्वमस्तं गच्छति भास्करे ।
कर्मजालं[७] तथा विश्वममनस्के विलीयते ।।९१।।

जिस भाँति सर्वप्रकाशक सूर्य के अस्त हो जाने पर सब कुछ विलीन हो जाता है, उसी प्रकार अमनस्क भाव सिद्ध होने पर अर्थात् मन के विलीन हो जाने पर समस्त कर्म जाल विलीन हो जाता है ।

91. Just as on setting of the shining sun every thing disappears, in the same way when the mind is fused and the Amanaska state is

---

१. ग. पुस्तके त्रुटितम् ।
२. वायुयानयुतः क. ख.
३. छित्वा क. ख.
४. रज्जुः ग.
५. सुदृढात्म निवन्धनम् ग.
६. संव्रियते ग.
७. करजालम् क. ख.

established, all the webs of the actions are dissolved.

इन्द्रियग्राह निर्मुक्ते निर्वाते[1] निर्मलामृते ।
अमनस्के ह्रदे स्नातः परामृतमुपाश्नुते ॥९२॥

इन्द्रियरूपी ग्राह (जल जन्तुओं) से पूर्णतः मुक्त, प्राणनिरोध रूपी प्रशान्त वायु वाले, निर्मल अमृतमय अमनस्करूपी सरोवर में स्नान करके साधक परमपद अमृतत्व का उपयोग करता है ।

92. A Sadhaka enjoyes supreme bliss by having a bath in the holy lake of Amanaska which is absolutely calm and pure there being no bind (the respiration having been completely controlled) and there being no danger of crocodiles of the senses.

इत्युक्तमेतत्सहजामनस्कं शिष्यप्रबोधाय शिवेन साक्षात् ।
नित्यं तु तं निष्फलनिष्प्रपञ्चं[2] वाचामवाच्यं स्वयमेव वेद्यम्[3] ॥९३॥

साक्षात् शिव द्वारा शिष्यों के प्रबोधन हेतु उपदिष्ट यह सहज अमनस्क योग सदा ही निष्फल और निप्रपञ्च है, अर्थात् इसकी साधना द्वारा साधक कर्म के भोगों और संसार के प्रपञ्चों से मुक्त हो जाता है । इसे स्वयं ही हृदय से समझा जा सकता है वाणी द्वारा इसका वर्णन संभव नहीं है ।

93. This Amanaska yoga is very easy and natural and has been directly preached by Lord Shiva himself for the benefit of the disciples. It is free from skills and intricacies, can be understood and experienced by the inner heart and cannot be described by speach.

चित्ते चलति संसारोऽचले मोक्षः प्रजायते ।
तस्माच्चित्तं स्थिरीकुर्यात् औदासीन्यपरायणः ॥९४॥

चित्त में जब तक चंचलता रहती है, तब तक यह संसार प्रपञ्च रहता है, और चित्त के निश्चल होते ही मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है, अतः साधक को चाहिए कि वह उदासीन भाव से युक्त हो और चित्त को स्थिर करें ।

94. The intricacies and obscurities of the world remain till the mind is unstable and wabering. As soon as the mind gets stability, salvation is gained, and therefore a Sadhaka should always

---

१. निमग्ने ग.
२. नित्यं हि नूनं विगत प्रपञ्चम् क. ख.
३. बोध्यम् क. ख.

try to gain stability of mind by fusing it and remaining in the state of transcendentness.

चतुर्विधा मनोवस्था विज्ञातव्या मनीषिभिः।
विश्लिष्टं च गतायातं सुश्लिष्टं च सुलीनकम् ॥९५॥

मनीषी गण मन की चार प्रकार की अवस्थाएं मानते हैं—विश्लिष्ट, गतायात, सुश्लिष्ट और सुलीन।

95. The learned people have described four states of the mind namely disintegrated, unstable, integrated and finely absorbed (fused).

विश्लिष्टं तामसं प्रोक्तं राजसं च गतागतम्।
सुश्लिष्टं सात्त्विकं प्रोक्तं सुलीनं गुणवर्जितम्[1] ॥९६॥

इनमें से विश्लिष्ट अवस्था तमोगुण प्रधान, गतागत (गतायात) रजोगुण प्रधान सुश्लिष्ट सत्त्वगुण प्रधान एवं सुलीन अवस्था त्रिगुणातीत होती है।

96. The first state of desintegrated mind has prominence of Tamas (which fills the mind with anger, darkness and inertia), the second state of unstable mind has prominence of Rajas (which excites passions and activity), the third state of integrated mind has prominence of Sattva (purity, calmness and bliss) and the fourth state, the absolutely absorbed or fused mind is beyond all, the Gunatita and cannot be deseribed (which has no influence of three gunas).

विश्लिष्टं च गतायातं विकल्पविषयग्रहम्।
सुश्लिष्टं च सुलीनं च विकल्पविषयापहम्[2] ॥९७॥

इनमें से विश्लिष्ट और गतायात अवस्थाओं में विविध विकल्पों और विषयों का ग्रहण होता है, जबकि सुश्लिष्ट और सुलीन अवस्थाओं में विकल्प और विषयों का बोध मिट जाता है।

97. In the first two states of the desintegrated and unstable mind there are great number of resolutions and dissolutions and efforts to gain objects where as in the last two integrated and fused states of the mind, the awareness of the resolves and objects disappear.

---

१. पद्यमिदं ग. पुस्तके नास्ति २. विषनाशनम् क. ख.

ततोऽभ्यास नियोगेन निरालम्बो भवेद्यदि ।
ततः समरसीभूतः[1] परमानन्द एव सः ॥९८॥

क्रमशः उत्तरोत्तर अवस्थाओं को प्राप्त करता हुआ यदि अभ्यास में लगा रहता है और उससे यदि निरालम्ब भाव को प्राप्त कर लेता है, तो वह समरस भाव को भी प्राप्त कर लेता है, यही परमानन्द की अवस्था है ।

98. If the Sadhaka continues his sadhana and resspectively attains one after the other states and thereby gains the absolute state, thire remaining no duality or support, be enjoyes the supreme bliss which is the final stage.

अभ्यस्यतो[2] मनः पूर्वं विश्लिष्टं चलमुच्यते ।
ततश्च निश्चलं[3] किञ्चित्सानन्दं च गतागतम् ॥९९॥
सानन्दं निश्चलं चेतः ततः सुश्लिष्टमुच्यते ।
अतीव निश्चलीभूतं सानन्दं च सुलीनकम् ॥१००॥

अभ्यास के प्रारम्भ में मन पहले विश्लिष्ट अवस्था में चंचल रहता है, द्वितीय अवस्था गतागत (गतायात) प्राप्त होने पर मन में कुछ निश्चल भाव और कुछ आनन्द आता है । अभ्यास करते हुए जव योगी का मन सानन्द और निश्चल हो जाता है, तब वह मन की सुश्लिष्ट अवस्था कहाती है, और जब पूर्ण निश्चल होकर मन आनन्द का अनुभव करता है तो वह सुलीन अवस्था होती है ।

99-100 In the course of practice, the mind remains very fickle in the begining in the disintegrated state. In the second state the mind tends some what toward, stability through wavering however getting some pleasure. By regular constant practice, the Sadhaka's mind starts gaining stabiliey and joy and finally stabilised and fused in the absolute bliss.

एवं भूतस्य[4] कर्माणि पुण्यापुण्यानि संक्षयम्[5] ।
प्रयान्ति नैव लिम्पन्ति क्रियमाणानि साधुना ॥१०१॥
उत्पन्नसहजानन्दः[6] सदाभ्यासरतः स्वयम् ।
सर्वसंकल्प सन्त्यक्तः संविद्वान्[7] कर्मसन्त्यजेत् ॥१०२॥

---

१. सरसिभूतानि क. ख.
२. अभ्यासतो ग.
३. ततश्चलाचलम् ग.
४. वभूव तस्य क. ख.
५. पापपुण्यस्य संक्षयः क. ख.
६. उतुङ्ग संहजानन्दः क. ख.
७. स विद्वान् क. ख.

इस स्थिति में पहुंचे हुए अर्थात् सुलीन अवस्था में जिसका मन पहुंच गया है, ऐसे योगी के सभी किये हुए पुण्य अपुण्य कर्मों का क्षय हो जाता है, तथा क्रियमाण कर्म उसमें लिप्त नहीं होते।

अभ्यास करते हुए सुलीन अवस्था में पहुंचकर जिस योगी में सहज आनन्द उत्पन्न हो गया है, एवं वह निरन्तर अभ्यास में लगा हुआ है, तथा जिसने सभी संकल्पों का त्याग कर दिया है, उस संविद् युक्त अर्थात् पूर्ण ज्ञानी योगी को कर्म छोड़ देने चाहिएं।

101-2. When the yogi attains this final innate bliss state of absolute absorption, through unabated practice, desires and dealings thereby disappear, supreme bliss and knowledge come down and there remain no act to be performed for such a yogi, as the results of all the past deeds, good or bad, stand cancelled.

ये तु विद्यार्थविज्ञाना:[1] विद्वांस इति कीर्त्तिताः।
आत्मतत्त्वं न जानन्ति दर्वीपाकरसं यथा ॥१०३॥

जो व्यक्ति साधना नहीं किया करते केवल ग्रन्थों को पढ़कर विद्यार्थ को जानते हैं एवं विद्वान् कहे जाते हैं, वे आत्मतत्त्व को उसी भांति नहीं, जानते जिस प्रकार चमचा पकाये हुए भोजन के रस को नहीं जानता।

103. The persons who do not knows Sadhana, who have acquired knowledge by merely studying books and call themselves to be 'learned', do not really know the Atma Tattva (the supreme inner self) in the same way as a spoon does not know the taste of the delicious food it serves.

सांसारिक क्रियायुक्तं ब्रह्माहमिति वादिनम्।
कर्मब्रह्मोभयभ्रष्टं सन्त्यजेदन्त्यजं यथा ॥१०४॥
वृथा देवपरित्यक्ताः[2] कर्मकाण्डविडम्बिताः[3]।
पाखण्डाः पण्डितम्मन्याः[4] न ते किमपि जानते ॥१०५॥

जो व्यक्ति सांसारिक क्रियाओं में फंसा है, किन्तु स्वयं को ब्रह्मज्ञानी कहता है, वह कर्म और ब्रह्म दोनों से भ्रष्ट है, अन्त्यज मानकर ऐसे व्यक्ति का त्याग कर देना चाहिए।

जो व्यर्थ की क्रियाओं में लगे हुए देव अर्थात् ब्रह्मज्ञान (आत्मतत्त्व के ज्ञान) से

---

१. विद्यार्थविज्ञाने ग.
२. देवान्परित्यज्य क. ख.
३. कर्मकाण्डविवर्जितान् क. ख.
४. पाखण्डपंडितान् क. ख.

परे हैं, और विविध कर्मकाण्ड में फंसे हुए हैं, स्वयं को पंडित मानने वाले हैं, वे पाखण्डी हैं, वे कुछ नहीं जानते।

104-105. A peıson, though entangled in the worldly activities, calls himself to be a Brahmajnani (knower of the supreme), is in reality a hypocrete the most digraded in action and knowledge away from the world and God both, such a man should be discarded as Shudra because he knows nothing.

न कर्माणि त्यजेद्योगी कर्मभिः त्यज्यते ह्यसौ।
कर्मणोमूलभूतस्य संकल्पस्यैव नाशतः ॥१०६॥

अमनस्क भाव को प्राप्त योगी को कर्मों के त्याग का प्रयत्न अपेक्षित नहीं होता कर्म ही उसे छोड़ देते हैं, क्योंकि समस्त कर्मों के मूलभूत संकल्प का नाश पहले ही हो चुका है।

106. The yogi, who attains and remains in the state of trancendentness, has not to make attempts to give up doing work as the Karma (actions) themselves leave that yogi due to the fact that the desires and resolves, which are the root cause of all actions, already stand destroyed.

यथा यथा[1] सदाभ्यासात् संकल्पविलयो भवेत्।
योगिनो भवति श्रेयान् कर्मत्यागस्तथा तथा[2] ॥१०७॥

निरन्तर अभ्यास से जैसे-जैसे संकल्पों का विलय होता है, वैसे-वैसे-ही (क्रमशः) कर्मों का भी त्याग स्वतः होने लगता है, जो कि परम श्रेष्ठ स्थिति होती है।

107. This so happens as with the continuous practice, desires and resolve start dissolving and disappearing with progress in sadhna and with that the actions are automatically given up without any attempt on part of the yogi.

दान्तानां कुशलानां च सततं मोक्षमिच्छताम्।
श्रद्धावतां सुशिष्याणां शास्त्रमेतत्प्रकाशते[3] ॥१०८॥

निरन्तर मोक्ष की कामना से जिन साधकों ने इन्द्रियों पर विजय प्राप्त कर ली

---

१. यदा यदा क. क. २. तदा तदा ख. ख. ग.

३. प्रकाशयेत् क. ख.

है, जो साधना में कुशल एवं श्रद्धावान् सुशिष्य हैं, उन्हें ही यह अमनस्कयोगशास्त्र प्रकाशित होता है।

108. This Amanaska shastra is revealed to those Sadhakas who have fully controlled their senses and are sicerely engaged in Sadhana with firm faith, dovotion and dedication with aspiration to gain Salvation.

शास्त्रमेतत्प्रयत्नेन सदाभ्यस्यं मुमुक्षभिः।
यस्य स्मरणमात्रेण स्वयं तत्त्वं प्रकाशते। १०९॥

इस शास्त्र का प्रयत्नपूर्वक अभ्यास मोक्षार्थियों को करना चाहिए, जिसके स्मरण मात्र से तत्त्व का प्रकाश स्वयं हो जाता है।

109. This Amanaska yoga should practised with full dexterity by the aspirants of Moksha (salvation) as by its remembrance the truth is revealed.

न दिवा जागरितव्यं स्वपितव्यं[1] नैव रात्रिभागेऽपि।
रात्रावहनि च सहजे स्वपितव्यं[2] योगिना नित्यम्॥११०॥

योगी को न दिन में जागना चाहिए न रात्रि में सोना चाहिए, बल्कि उसे चाहिए कि वह नित्य रात और दिन में सहज योगनिद्रा में रहे।

110. A yogi should neither keep awakening in the day nor sleeping in the night, but he should remain in Yoga-Nidra for all the time day and night.

निर्मलसहजस्थितपुरुषे[3] न दिवारात्रिभेदोऽस्ति[4]।
जागरशयनविवर्जित[5]चिन्मात्रानन्दसंस्थानात् ॥१११॥

जो साधक योगी पुरुष निर्मल सहज अमनस्क भाव में स्थित होते हैं, उनके लिए दिन और रात्रि में कोई भेद नहीं रहता। क्योंकि वे जागरण और शयन से भिन्न चिन्मात्र आनन्द में ही निरन्तर स्थित रहते हैं।

111. The Sadhaka yogis who keep themselves established in the pure natural 'Amanaska Bhava (transcendentness) there is no

---

१. सुप्तताम् ग.
२. शयितव्यम् ग.
३. निर्मनः सहजस्थिते पुरुष क. ख.
४. रात्रिशब्दोऽस्ति क. ख.
५. जागरणशयनविवर्जित क. ख.

difference of day and night for them as they always remain in the blissful state of pure conciousness which is quite different from the awakening and sleeping states.

अन्य जन्मकृताभ्यासात् स्वयं तत्त्वं प्रकाशते।
सुप्तोत्थितस्तु[1] प्रत्यूषे ह्युपदेशाद् विना[2] बोधः[3] ॥११२॥

जिसने पूर्व जन्म में साधना की है, उसे अन्य जन्म में बिना गुरु के उपदेश के ही स्वयं तत्त्व ज्ञान उसी प्रकार प्रकट हो जाता है, जिस प्रकार प्रातः सोकर जागने पर पूर्व दिन का विवरण स्वतः स्मरण हो जाता है।

112. The Yogi, who practised this Amanaska-Yoga in previous birth but could not attained Moksha, gets himself the knowledge of Atma-Tattva through it as a man awakend in morning yet remembrance of previous day.

शुद्धाभ्यासस्य शान्तस्य सदैव गुरुसेवनात्[4]।
गुरुप्रसादात्तत्रैव तत्त्वज्ञानं प्रकाशते ॥२१३॥

निर्दोष अभ्यास करने वाले, शान्त चित्त रहने वाले एवं निरन्तर गुरु की सेवा करने वाले साधक के हृदय में गुरु की कृपा से कभी भी अर्थात् किसी भी स्थिति में तत्त्व ज्ञान प्रकाशित हो उठता है।

113. Those who practise faultlessly, have trangility of mind and peaceful disposition and serve their Guru with sincerety, gain enlightment any time by grace of the Guru.

ॐकारप्रमुखैः[5] विचित्रकरणैः प्रायश्च वायोर्जयैः[6]।
तेजश्चिन्तनमन्तरालकमले[7] शून्याम्बरालम्बनम्।
त्यक्त्वा सर्वमिदं कलेवरगतं[8] मत्वा मनोविभ्रमम्।
देहातीतमवाच्यमेक[9]ममनस्तत्त्वं बुधैः सेव्यताम्[10] ॥११४॥

ॐकार आदि विविध मन्त्रों के द्वारा अथवा अन्य विविध उपायों द्वारा, प्राणों पर विजय प्राप्त करके अर्थात् प्राणायाम में सिद्धि प्राप्त करके अथवा हृदय कमल में ज्योति स्वरूप आत्मा का ध्यान करते हुए शून्य आकाश का अवलम्बन करना यह सब

---

१. 'तु' पद क. ख. पुस्तकयोः नास्ति
२. उपदेशादि भाविना ग.
३. प्रवुध्यते क. ख.
४. गुरु सेवया क. ख.
५. त्रिविधैः ग.
६. प्रायश्च वायो जयः क. ख.
७. चिन्तनतो लयेन मनसः ग.
८. कलेवर गतम् इति क. ख. पुस्तकयो त्रुटितग्
९. देहान्ते तदवाच्चमेक ० क. ख.
१०. मनस्कत्वं क. ख.

शरीर गत मानसिक विभ्रम मात्र है, ऐसा समझकर और इसे छोड़कर देहातीत वाणी के अविषय भूत एकमात्र अमनस्क भाव की ही उपासना करनी चाहिए ।

114. By chanting 'Om' and other various Mantras or by adopting other different methods, efforts are made to gain full controll on the Prana or achieve Perfection in Pranayama (breath controll), or meditation is done by concentrating on light in the lotus of heart or in the emptiness of sky these are all mental delusions pertaining to the body. This all should be fully understood and such efforts should be given up and only the 'Amanaska Bhava' (transcendentness) should be practised which is beyond the limits of body, speech and mind.

इति श्री ईश्वर वामदेवसंवादे[1] अमनस्के योगशास्त्रे[2] स्वयं बोधाख्यो द्वितीयो लयः सम्पूर्णः[3] ।

Here completes the second chapter 'Swaym bodhakhya'—of the Amanaska Yoga' conversation between Ishwar and Vama Deva.

केशवानन्दशिष्येण ब्रह्ममित्रेण योगिना ।
दीपिकालोकभाषायां कृता शिष्यहिताय हि ।
संख्यारामख पक्षेब्दे कार्त्तिके सितपक्षके ।
सूर्यं षष्ठ्यां रवौ वारे व्याख्यापूर्त्तिमगादियम् ॥

योगिराज स्वामी केशवानन्द सरस्वती के शिष्य योगी डा० ब्रह्ममित्र अवस्थी ने प्रयाग में गंगा-यमुना के संगम तट पर कार्तिक शुक्ला षष्ठी (सूर्यषष्ठी) संवत् २०३९ विक्रमीय को अमनस्क योग की यह हिन्दी व्याख्या पूर्ण की ।

Yogi Brahma Mittra, disciples of Swami Keshavananda, wrote this commentary (in Hindi) on Amanaska yoga Shastra (in sanskrita) for benefit of the students of yoga.

---

१. पद्यमिदं क. ख. पुस्तकयोः 'अन्यजन्मेत्यादि पद्यात्पूर्वं', ग. पुस्तके च 'न दिवा' इत्यादि पद्यात्पूर्वं पठ्यते ।

२. 'अमनस्के योगशास्त्रे' ग. पुस्तके न पठ्यते

३. स्वयं बोधाख्योऽमनस्कः सम्पूर्ण इति ग.; क. ख. पुस्तकयोः स्वयं बोधाख्यो न पठ्यते ।

Yogi Brahma Mittra bestowed the chance to render his commentary into English to Shri Bajrang Singh who completed the English rendering with gratitude on sunday the thirteenth day of April in the year one thousand nine hundred eightysix A.D. corresponding to the fourth day of the Chaitra, Shukla-paksha Mahakumbha Parva, holy-day of Baishakhi of the year two thousand forty three of Vikrama era at the holy-place Rishikesha on the back of the holy river Ganga.

*